कल्याण

वर्ष ३५
अङ्क ७

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण—१.३३.००० (एक लाख तैंतीस हजार)

विषय-सूची,

कल्याण, सौर श्रावण २०१८, जुलाई १९६१

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—लीलारत दिव्य-युगल [कविता] ···	१०२१
२—कल्याण ('शिव') ···	१०२२
३—माँ (श्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी महाराज) ··· ···	१०२३
४—नाव तुझे सौंप दी ! (श्रीबालकृष्ण बलदुवा)	१०२५
५—परमात्माकी प्राप्तिमें श्रद्धा-विश्वासकी प्रधानता (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ··· ···	१०२६
६—व्रज और वल्लभ-सम्प्रदाय (श्रीमाधवजी गोस्वामी) ··· ···	१०३५
७—मैं एकमात्र प्रभुका ही सेवक हूँ । एकमात्र प्रभु ही मेरे स्वामी हैं [कविता] ···	१०३७
८—मधुर ··· ···	१०३८
९—गोवर्धन-पूजनका रहस्य (याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य)	१०४०
१०—नाद-ब्रह्म और उसका स्वरूप (श्री-लक्ष्मीनारायणजी गर्ग) ···	१०४२
११—मैं भी शुभ बन गया [कविता] ···	१०४६
१२—विरक्त कौन ? [कहानी] (श्री'चक्र')	१०४७
१३—भारतका एक बढ़ता हुआ दुर्व्यसन—धूम्रपान (श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा) ···	१०५०
१४—मूर्ति-प्रतिष्ठा (श्रीरावी) ···	१०५४
१५—उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददास-जी, श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्द-प्रसाद श्रीवास्तव) ···	१०५५
१६—भगवान् हर समय, हर जगह मेरे साथ रहते हैं ··· ···	१०६०
१७—वैज्ञानिक संजीवनी (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ··· ···	१०६१
१८—सत्सङ्ग और दुःसङ्ग [कविता] ···	१०६६
१९—श्रीपुरीधाम (आचार्य श्रीजगन्नाथ-प्रसादजी गुप्त एम्० ए०, बी० टी०)	१०६७
२०—महाप्रसादसे दुःख-नाश [कविता] ···	१०६९
२१—मानवताके लिये मानवधर्म आवश्यक	१०७०
२२—तलाक-कानून (श्रीप्रभुनारायणसिंहजी)	१०७३
२३—तुम ही तुम हो [कविता] (पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')	१०७५
२४—समस्याओंका मूल (साहित्याचार्य श्रीराममणिजी त्रिपाठी एम्० ए०, साहित्यरत्न) ··· ···	१०७६
२५—मेरे मनमें अब प्रभु स्वच्छन्द विहार करते हैं [कविता] ···	१०७९
२६—पढ़ो, समझो और करो ···	१०८०
२७—अशोक होटलमें गोमांस ! ···	१०८४

चित्र-सूची

१—हंसवाहिनी वीणावाहिनी सरस्वती ··· ··· ···	(रेखाचित्र) ···	मुखपृष्ठ
२—लीलारत दिव्य-युगल	(तिरंगा) ···	१०२१

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु०१०.००
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

लीलारत दिव्य-युगल

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च । यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम् । श्रुत्वा हृदीर्यते साम्नि तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

वर्ष ३५ **गोरखपुर, सौर श्रावण २०१८, जुलाई १९६१** **संख्या ७ पूर्ण संख्या ४१६**

लीलारत दिव्य-युगल

परम प्रेम-आनंदमय दिव्य जुगल रसरूप ।
कालिंदी-तट कदँब-तल सुषमा अमित अनूप ॥
सुधा-मधुर-सौंदर्य-निधि छलकि रहे अँग-अंग ।
उठत ललित पल-पल बिपुल नव-नव रूप-तरंग ॥
प्रगटत सतत नवीन छबि दोऊ होड़ लगाय ।
हार न मानत जदपि, पै दोऊ रहे बिकाय ॥
नित्य छबीली राधिका, नित छबिमय ब्रजचंद ।
बिहरत बृंदाबिपिन दोउ लीलारत स्वच्छंद ॥

कल्याण

याद रक्खो—मनुष्य कर्मयोनि है। कर्म करना उसका स्वभाव है। अतः वह बिना कर्म किये रह ही नहीं सकता। सुव्यवस्थित शुभ कर्म नहीं करेगा तो अव्यवस्थित अशुभ कर्म करेगा, आलस्य तथा प्रमादयुक्त निकम्मे कर्म करेगा। जिनका परिणाम उसके लिये अत्यन्त हानिप्रद एवं दुःखजनक होगा। इसलिये उसे सदा-सर्वदा शुभकर्ममें लगे रहना चाहिये।

याद रक्खो—जिम्मेवारीके कर्मका भार न रहनेसे ही मनुष्य प्रमाद करता है। इसलिये तुम अपनेको जिम्मेवारीके साथ कर्ममें लगाये रक्खो, जिससे प्रमादकी बात सोचने-करनेके लिये अवकाश ही न मिले। 'करने योग्य' कर्मका न करना और 'न करने योग्य' कर्म करना—यही प्रमाद है। मनुष्य जब प्रमादमें फँस जाता है, तब उसका सर्वथा पतन होते देर नहीं लगती। प्रमाद मृत्युसे भी बढ़कर है अतएव प्रमादसे सदा बचो।

याद रक्खो—जबतक तुम जिम्मेवारीके साथ अपना सारा समय कर्तव्य (करनेयोग्य) शुभकर्ममें नहीं लगाये रक्खोगे—तबतक प्रमाद होनेकी सम्भावना रहेगी ही। शुभकर्म वही है, जिससे तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र हो, मनके भाव उन्नत तथा विशुद्ध हों, परिणाममें अपना तथा दूसरोंका हित होता हो, चित्तमें शान्ति तथा सुखकी वृद्धि होती हो एवं सुव्यवस्थापूर्वक सहज भावसे सत्कर्ममें उत्साहयुक्त प्रवृत्ति बनी रहे।

याद रक्खो—शुभ कर्ममें लगे रहनेका यह अर्थ नहीं है कि बाहरी कर्मोंमें इतना अधिक फँसा रहना पड़े, जिससे विचार करने, कर्तव्याकर्तव्य सोचने, शास्त्र तथा सत्पुरुषोंसे कर्मके लिये परामर्श करने, सदाचारकी रक्षा एवं उन्नति करने, भगवत्स्मरण तथा नियमित उपासना-आराधना करने और घरके लोगोंके साथ यथोचित व्यवहार-बर्त्ताव तथा उनके प्रति कर्तव्यपालन करनेके लिये ही अवकाश न मिले। ऐसा कर्मबहुल जीवन मशीनकी तरह जडवत् बन जाता है और आखिर उसे प्रमादग्रस्त होकर पतित होना पड़ता है।

याद रक्खो—कर्मका अर्थ है वे सारे सुकर्म—सत्कर्म जो इन्द्रियोंके द्वारा, मन-बुद्धिके द्वारा होते हैं तथा जिनसे सर्वाङ्गीण योगक्षेमकी प्राप्ति एवं मानवजीवनकी सफलता प्राप्त होती है। अतः जब जहाँ जो कर्म करना आवश्यक हो, वही कर्म करना चाहिये। एक कर्ममें लगे रहना और दूसरे सब कर्तव्य-कर्मोंके प्रति दायित्वहीन होकर उनकी अवहेलना करना उचित नहीं है। एकाङ्गी कर्म सुकर्म नहीं रह पाता। हाँ, अवश्य ही मानवके प्रत्येक कर्मका लक्ष्य होना चाहिये—भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति—जिसके लिये वह मनुष्य बना है। और उसके प्रत्येक कर्ममें प्रेरक होनी चाहिये भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम प्राप्त करनेकी सदिच्छा।

याद रक्खो—मानव-जीवनका लक्ष्य भगवान् हैं, भोग नहीं। भोगकी उपेक्षा नहीं है, पर उसे भगवत्प्राप्तिके लिये सहायकरूपमें बनाकर स्वीकार करना है, भगवान्की जगह लक्ष्य बनाकर कदापि नहीं। जीवनका लक्ष्य भगवान् होगा तो कर्म स्वयं सत्कर्म बन जायँगे—दैवी-सम्पत्ति जीवनका स्वभाव बन जायगी और यदि लक्ष्य भोग होगा तो सत्कर्म भी दुष्कर्म बनने लगेंगे तथा आसुरी सम्पत्ति जीवनका स्वभाव बन जायगा। दैवीसम्पत्तिका फल है सुख-शान्तिपूर्वक निष्पाप जीवननिर्वाह तथा तमाम बन्धनोंसे मुक्ति और आसुरी सम्पत्तिका फल है दुःख-अशान्ति-भय-विषादयुक्त जीवन और परिणाममें बन्धन तथा नरक-यन्त्रणाकी प्राप्ति। इसलिये भगवान्को ही जीवनका एकमात्र लक्ष्य बनाकर सदा सत्कर्ममें ही लगे रहो!

'शिव'

माँ

(लेखक—श्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी महाराज)

हँसाती हो माँ !

अब तुम क्या सजोगी ? तुम्हीं तो सब कुछ सजकर खेल कर रही हो । तुम्हीं तो मिट्टी बन रही हो, तुम्हीं जल बन रही हो, तुम्हीं अग्नि, तुम्हीं वायु, तुम्हीं अनन्त आकाश ! माँ मेरी ! मेरी माँ ! तुम्हीं तो सब कुछ हो ।

लीला करनेके लिये बहुरूप हो रही हो । ब्रह्ममयी माँ मेरी ! तुम्हीं तो प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्व गगनको आलोकित करके उदय होती हो । तुम्हीं तो चाँद बन-कर क्रीड़ा करती हो । बतलाओ माँ ! तुम्हारे सिवा जगत्में और क्या है ? माँ मेरी, लीलामयी अनन्तरूपिणी माँ मेरी ! दो सौ करोड़ कोसतक फैली हुई यह पृथ्वी तुम्हीं हो, तुम्हीं ऊँचाईमें दो सौ अस्सी करोड़ कोस हो ! लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध, जल—ये सात समुद्र तुम्हीं हो । सप्त कुलाचल हिमालय, सुमेरु आदि पर्वत तुम्हीं हो । गङ्गा-यमुना, गोदावरी-सरस्वती, कावेरी-नर्मदा आदि अनन्त नदी बनकर तुम्हीं खेल कर रही हो । पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, मानव-दानव, देवता-पिशाच, भला-बुरा सब तुम्हीं सजी हुई हो । जगत्में ऐसा कुछ न तो कभी था और न होगा, जो तुम नहीं हो मेरी माँ ! तुम्हीं सब कुछ बनकर खेल कर रही हो । अनन्त-अनन्त कालसे यह खेल चल रहा है । इस क्रीड़ाका विराम-विश्राम नहीं है । एक ही तरहसे खेल करती जा रही हो ! यह तुम्हारी लीला कैसी उन्मादिनी है माँ ! कितनी राग-रागिनी, कितना सङ्गीत, कितना प्रकाश तुमसे झर-झरकर गिर रहा है । तुम्हारे रूपके एक कणको लेकर यह जगत् रूपवान् हो रहा है ! मेरी माँ; माँ, यह तुम्हारी कैसी लीला है माँ ? माँ ! माँ ! माँ !

स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, युवक-युवती, ब्राह्मण-चाण्डाल, सुन्दर-कुत्सित, भला-बुरा, पाप-पुण्य—कितने रूप धरकर केवल तुम्हीं लीला कर रही हो माँ, मेरी माँ ! तुम मेरी पकड़में आ जाओ, यदि तुम स्वयं पकड़में न आओगी तो किसकी मजाल है जो तुमको पकड़ सके ! अहा ! अहा ! कैसी सुन्दर हो तुम । ओह, कैसी कुत्सित हो तुम ! क्यों ? क्यों तुम इतने साजोंमें सज रही हो ?

खेल ! यह तुम्हारा खेल है ! करो, करो, खेल करो । अनन्त-अनन्त कालतक खेला करो ! माँ, माँ, मेरी माँ ! अहा ! यह अनन्त आकाश तुम हो ! इस आकाशकी नक्षत्रमण्डली तुम्हारे लोम-कूप हैं ! सुन्दर-सुन्दर यह पूर्णचन्द्र तुम्हीं हो । अच्छा, सब मेरी माँ है ! यह अमावस्याका सूचीभेद्य प्रगाढ़ अन्धकार—यह भी तुम्हीं हो ! वाह ! वाह ! अच्छा, कैसा-कैसा सुन्दर ! कैसा रमणीय ! वह कोकिल कूक रही है ! यह कोकिल तुम्हीं हो ! यह कोकिलकी कूक तुम्हीं हो माँ ! अनन्तरूपिणी माँ, विश्वरूपिणी माँ ! यह विश्व-रङ्गमञ्च तुम्हीं हो, नट-नटी तुम्हीं हो । अभिनय तुम्हीं हो, दर्शक भी तुम्हीं हो, एकमात्र तुम्हीं हो ! तुम्हें कौन पकड़ सकता है ? जिसको तुम पकड़वाती हो, वही तुम्हें पकड़नेमें समर्थ होता है । माँ, मेरी माँ ! अहा ! कैसा सुन्दर है तुम्हारा रूप ! कैसी सुन्दर है तुम्हारी लीला ! कैसा मनोरम है यह जगत्—तुम्हारा खेलघर ! माँ, मेरी माँ ! यदि तुम अपना परिचय स्वयं न दो तो कोई भी तुम्हें जान नहीं सकता ।

माँ ! माँ ! अपने सम्बन्धमें अपने ही मुखकी तुम्हारी कही बात है—'मैं अज तथा एकपाद, मैं अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, सुरेश्वर, जयन्त, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वैवस्वत, सावित्र, हर, रुद्र—ये ग्यारह रुद्र; मैं भव, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास—ये आठ वसु; मैं धाता, मित्र, यम, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्,

पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु—ये द्वादश आदित्य, तथा समस्त देवताओंके रूपमें मैं विचरण करती हूँ। मैं मित्र और वरुण—दोनोंको धारण करती हूँ। मैं इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण करती हूँ। मैं देवताओंके शत्रुओंका संहार करती हूँ। सोमदेवको, त्वष्टा नामके देवताको धारण करती हूँ। तथा पूषा और भग नामक सूर्यद्वयको धारण करती हूँ। अपरिमित हवि-संवलित उपयुक्त हविके द्वारा देव-वृन्दको तृप्त करनेवाले तथा यथाविधि सोमरस प्रस्तुत करनेवाले यजमानके लिये यज्ञ-फलरूप धनादिका विधान मैं ही करती हूँ।

मैं सम्पूर्ण शस्य-श्यामला, सागर-मेखला जगत्‌की ईश्वरी हूँ। जो मेरी उपासना करते हैं, उनको धन प्रदान करनेवाली मैं ज्योतिर्मयी देवी तथा परम ब्रह्मकी शक्ति हूँ। यज्ञार्ह-गणमें मैं ही श्रेष्ठतमा हूँ। मुझसे बढ़कर श्रेष्ठ और कोई नहीं है। मैं विश्व-प्रपञ्चके रूपमें नाना भावोंसे अवस्थित हूँ। सर्वभूतोंमें जीवरूपसे प्रविष्ट हूँ। देव-मानव आदि यजमानसमूह सब देश और सब कालमें मेरी ही विविध भावसे उपासना करते हैं। निखिल प्राणी मेरी शक्तिसे शक्तिमान् होकर भोजन-दर्शन आदि करते हैं। श्वास-प्रश्वास आदिका निर्वाह करते हैं। शब्दादि श्रवण करते हैं। जो मुझको नहीं जानते, वे ही पुनः-पुनः जन्म-मरण आदि क्लेशोंको प्राप्त होकर संसारमें हीन-से-हीन बनते हैं। हे कीर्तिमान्! तुम सुनो। मैं तुमको श्रद्धाके द्वारा प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्वको बतलाऊँगी।

देवताओं और मनुष्योंके लिये प्रार्थनीय ब्रह्मतत्त्वका उपदेश मैं स्वयं तुमको देती हूँ। इस प्रकारकी ब्रह्म-स्वरूपिणी मैं ही हूँ। मैं जिसको-जिसको चाहती हूँ, उस-उसको ही सर्वश्रेष्ठ बना देती हूँ। मैं किसीको प्रजा-पति, किसीको ऋषि, किसीको ब्रह्मा, मेधावी प्रज्ञाशाली बनाती हूँ। मैं ही त्रिपुरासुरके युद्धकालमें ब्राह्मणविद्वेषी हिंसक त्रिपुरासुरको वध करनेके लिये रुद्रके धनुषको ज्या-युक्त करती हूँ। मैं अपने भक्तोंके कल्याणके लिये भीतर-बाहर संग्राम करती हूँ। स्वर्गमें, मर्त्यमें अन्तर्यामिनी रूपसे मैं ही प्रवेश करती हूँ। मैं ही सबके आधार-स्वरूप परमात्माके ऊपर द्युलोकको प्रसव करती हूँ। समस्त प्राणियोंकी बुद्धिके भीतर जो ब्रह्मचैतन्य है, वही मेरा अधिष्ठान है। मैं इस निखिल भुवनमें नाना रूपोंमें सजकर विराजमान हो रही हूँ और इस स्वर्गको, समस्त विकारी वस्तुओंको अपने कारणभूत मायामय शरीरके द्वारा समाच्छन्न किये रखती हूँ। मैं भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल—इन चौदह भुवनोंमें सब भूतोंकी सृष्टि करती हूँ और वायुके समान उनके भीतर-बाहर सर्वत्र स्वच्छन्द विचरण करती हूँ। स्वरूपतः मैं इस आकाशसे अतीत तथा इस पृथ्वीसे परे असङ्ग ब्रह्मरूपिणी हूँ, तथापि अपनी महिमामें इस महान् विश्वरूपको धारण करके लीला करती हूँ।'

माँ! माँ! यह तुम्हारी निज मुखकी कही बात है। मेरी माँ! माँ! तुम्हारा स्वरूप तुम्हारे जतलाये बिना किसकी सामर्थ्य है, जो जान सके, कह सके। माँ! मेरी माँ!

तुम कितने रूप धरकर लीला कर रही हो माँ! प्रभातमें कुमारी ऋग्वेद-युता, हंस-स्थिता, ब्रह्मरूपा; मध्याह्नमें गरुडवाहिनी युवती विष्णुरूपा; सायंकालमें वृद्धा वृषभारूढा, शिवस्वरूपिणी—माँ अनन्तरूपिणी हो, मेरी माँ!

तुम्हारे मस्तकपर तेजोमण्डित स्वर्ग, ललाटमें रुद्र, दोनों भ्रुकुटियोंमें मेघ, दोनों चक्षुओंमें चन्द्र-सूर्य, दोनों कानोंमें शुक्र और बृहस्पति, नासिकाद्वयमें वायु, दन्त-पङ्क्तिद्वयमें दोनों अश्विनीकुमार अधरोष्ठमें उभय संध्या, मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें साध्यगण, स्तनद्वयमें अष्ट वसु, बाहु-युगलमें मरुद्गण, हृदयमें पर्जन्यदेव, उदर-में आकाश, नाभिमें अन्तरिक्ष, कटिदेशमें इन्द्र और अग्नि,

जघनमें प्रजापति, ऊरुद्वयमें कैलास और मलय पर्वत, दोनों घुटनोंमें समस्त देववृन्द, जङ्घामें जह्नुपुशिक, पैरोंके ऊपरी भागमें पितृदेवगण, पैरोंके अधोभागमें वनस्पतियाँ, लोमसमूहमें ऋषिगण, नखोंमें मुहूर्त्तगण, रक्त-मांसमें षड्-ऋतु, आच्छादनमें संवत्सर, चक्षुके निमेषोंमें दिन-रात्रि या चन्द्र-सूर्य हैं। माँ! मेरी माँ! तुम्हें शत-शत, सहस्र-सहस्र, लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि प्रणाम है माँ! मेरी माँ!

माँ! तुम वेदमाता हो, तुम परात्परा महाविद्या हो। तुम भूर्भुवः स्वः व्याहृति आदि मन्त्रस्वरूपिणी हो। माँ, मेरी माँ! तुम स्वरूपमें ब्रह्मरूपके अतीत हो, तुम क्या हो—कहा नहीं जा सकता।

तुम सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी, समस्त वेदान्त-उपनिषदादिके द्वारा ज्ञेय हो, तुम सूर्यमण्डल-वासिनी हो। प्रभातकालमें तुम रक्तवर्णा बालिका हो, मध्याह्नमें पीतवसना युवती हो, सायाह्नमें कृष्णवर्णा वृद्धा हो। माँ! मेरी माँ! तुम नित्य हो, तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ। मेरी माँ! ब्रह्माने तुम्हारी इसी प्रकार स्तुति की थी।

माँ! मेरी माँ! तुम सत्-चित्-आनन्दरूपिणी हो, तुम मूल प्रकृति हो, तुम हिरण्यगर्भरूपा हो। हे रमणीये! तुम प्रसन्न हो। तेजःस्वरूपिणी तुम प्रसन्न हो। तुम सर्वश्रेष्ठा हो, तुम नित्यानन्दस्वरूपिणी हो। तुम द्विजातिगणकी जाति हो। सुन्दरी माँ! तुम प्रसन्न हो, तुम सदा रहती हो—अतः नित्या सनातनी हो। जो सनातन है, वही तुम्हें प्रिय है। तुम नित्यानन्दस्वरूपिणी हो, तुम्हीं सर्वमङ्गलरूपा हो, तुम प्रसन्न हो माँ! तुम विप्रगणकी सर्वस्वरूपा हो। तुम मन्त्रोंका सार और परात्परा हो। तुम निखिलसुखदायिनी हो। रमणीये माँ! मेरी प्रसन्न हो माँ! तुम विप्रोंके पापरूपी काष्ठको जलानेमें प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान हो। तुम ब्रह्मतेज प्रदान करो। तुम प्रसन्न हो माँ! मनुष्य काय-मन-वाक्यसे जो पाप करता है वह सारा पाप तुम्हारे स्मरणमात्रसे भस्मीभूत हो जाता है। माँ माँ माँ! तुम्हारे स्नेहके दुलारे ब्रह्मा इस प्रकारसे तुम्हारा स्तवन करते हैं।

माँ! मेरी माँ! मैं भी तुम्हारा अति अधम मूर्ख पुत्र हूँ। माँ! मैं तुम्हारी स्तुति नहीं जानता, तुम्हारे स्वरूपको नहीं समझता, मैं केवल पुकारता हूँ माँ माँ माँ! मेरी माँ! मेरी गतिमुक्तिदायिनी माँ! माँ माँ माँ माँ माँ! अरी माँ माँ माँ माँ माँ !!

नाव तुझे सौंप दी !

जब लंगर उठाकर नाव तुझे सौंप दी, तब मेरे पास सोचनेके लिये रह गया ही क्या ?

नाव डूबेगी या पार लगेगी ? पार लगेगी तो कैसे ? कब ? कहाँ ?—यह सब अब भी सोचते ही रहना है क्या ?

यह सब तो पहले सोचनेकी बात थी।

जब लंगर उठाकर नाव तुझे सौंप दी, तब मेरे पास सोचनेके लिये रह गया ही क्या ?

—बालकृष्ण बलदुवा

परमात्माकी प्राप्तिमें श्रद्धा-विश्वासकी प्रधानता

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(गीता १७ । ३)

'भारत ! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है । यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है वह स्वयं भी वैसा ही है ।'

कुछ लोगोंका कथन है कि 'हमलोग बहुत वर्षोंसे सत्सङ्ग करते हैं और अपनी समझ तथा शक्तिके अनुसार साधन भी करते हैं; पर जैसी उन्नति होनी चाहिये, वैसी उन्नति नहीं दिखायी पड़ती, इसका क्या कारण है ? हमलोगोंकी उन्नति किस प्रकार हो ?' इसका उत्तर यह है कि श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही साधनमें रुकावट डालनेवाली है । इसलिये श्रद्धाके विषयमें गहराईसे विचार करके श्रद्धाको बढ़ाना चाहिये । श्रद्धाके योग्य चार हैं—१ ईश्वर, २ ज्ञानी महात्मा, ३ गीतादि शास्त्र और ४ अपना आत्मा । इन चारोंमेंसे किसी एकपर भी पूर्णतया श्रद्धा-विश्वास हो जाय तो मनुष्यका सहज ही कल्याण हो सकता है ।

गीतामें बतलाया गया है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४ । ३९)

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है ।'

इससे यह समझना चाहिये कि श्रद्धाकी कसौटी है तत्परता और तत्परताकी कसौटी है मन-इन्द्रियोंका संयम; क्योंकि जितनी श्रद्धा होती है उतनी ही साधनके लिये तत्परता होती है और जितनी तत्परता होती है उतना ही मन-इन्द्रियोंका संयम होता है ।

१· ईश्वरपर श्रद्धा-विश्वास

हमलोगोंको ईश्वरपर इस प्रकार दृढ़ श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये कि ईश्वर हैं, वे बहुतोंको मिले हैं, वर्तमानमें मिलते हैं एवं भविष्यमें मिलते रहेंगे तथा ईश्वर सर्वव्यापी, सबके घट-घटकी जाननेवाले, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, परम दयालु, परम प्रेमी, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, असम्भवको भी सम्भव करनेवाले, सर्वशक्तिमान्, अज, अविनाशी, परम दिव्य पुरुष परब्रह्म परमात्मा हैं । उनकी प्राप्ति होनेपर मनुष्यके सारे दुःख, दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, आलस्य, प्रमाद और अज्ञानका विनाश होकर सदाके लिये संसार-जालसे छूट जाता है और उसे परमशान्ति और परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है, जिसको गीतामें परमात्माकी प्राप्ति (१३ । ३४), निर्वाण ब्रह्मकी प्राप्ति (५ । २४-२५), अमृतकी प्राप्ति (१३ । १२), परमशान्तिकी प्राप्ति (४ । ३९), आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति (६ । २८), अविनाशी परमपदकी प्राप्ति (१५ । ५), ब्रह्मकी प्राप्ति (१३ । ३०), परम गतिकी प्राप्ति (८ । १३; १३ । २८) आदि अनेक नामोंसे कहा गया है ।

जब मनुष्यका उन सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी परम दयालु परमात्मापर भक्तिपूर्वक प्रत्यक्षकी भाँति श्रद्धा-विश्वास हो जाता है, तब फिर उसके द्वारा जो भी कुछ होता है, भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार ही होता है, भगवान्‌के विरुद्ध किञ्चिन्मात्र भी कभी नहीं होता । यदि किसीके द्वारा उनकी आज्ञाके विरुद्ध आचरण होते हैं तो समझना चाहिये कि उसे ईश्वरके अस्तित्वपर भी विश्वास नहीं है; क्योंकि मनुष्यके हृदयमें 'ईश्वर हैं या नहीं, वे हैं तो मिलते हैं या नहीं, मिलते हैं तो मुझको मिलेंगे या नहीं, मिलेंगे तो मेरा कल्याण होगा या नहीं तथा उनको जो सर्वहितैषी, न्यायकारी, सर्वज्ञ, कर्म-फलदाता, परम प्रेमी और परम दयालु बतलाया गया है, यह बात सही है या नहीं—इस प्रकारके संदेहोंसे युक्त हृदयमें श्रद्धा-विश्वास नहीं होता । यही कारण है कि सत्संग और साधन करनेपर भी उन्नति होती हुई नहीं दिखायी पड़ती । इसलिये हमलोगोंको श्रद्धाभक्तिपूर्वक ईश्वरमें दृढ़ विश्वास करना चाहिये । इस विषयमें श्रुति, स्मृति और शास्त्र तो प्रमाण हैं ही, बलवती युक्ति भी प्रमाण है एवं साधन करनेसे तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी है, किंतु वह श्रद्धापर निर्भर करता है ।

शुक्लयजुर्वेदमें बतलाया गया है—

ईशावास्यमिदᳪ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

(यजुर्वेद ४० । १ का पूर्वार्ध)

'अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड-चेतनस्वरूप जगत् है, वह समस्त ईश्वरसे व्याप्त (पूर्ण) है ।

मनुस्मृतिमें कहा गया है—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात् तं पुरुषं परम् ॥

(मनु० १२ । १२२)

'जो सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म और सबका भली प्रकार शासन करनेवाला एवं स्वर्णके समान उज्ज्वल और निर्मल तथा स्वप्नकालमें भी बुद्धिद्वारा जाननेमें आता है, उस परम पुरुष परमेश्वरको जानना चाहिये ।

गीता कहती है—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥

(गीता १५ । १७)

'इन (क्षर-अक्षर) दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा—इस प्रकार कहा गया है ।'

श्रीविष्णुपुराणमें बतलाया गया है—

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपो
व्यक्तस्वरूपोऽप्रकटस्वरूपः ।
सर्वेश्वरः सर्वदृक् सर्वविच्च
समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥

(विष्णुपुराण ६ । ५ । ८६)

'वे ईश्वर ही समष्टि और व्यष्टिरूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप हैं, वे ही सबके स्वामी, सबके साक्षी और सब कुछ जाननेवाले हैं तथा उन्हीं सर्वशक्तिमान्‌को परमेश्वर कहते हैं ।'

योगदर्शनमें श्रीपतञ्जलिजी कहते हैं—

ईश्वरप्रणिधानाद् वा ।

(योगदर्शन १ । २३)

'ईश्वर-प्रणिधानसे भी निर्बीज समाधिकी सिद्धि शीघ्र हो सकती है ।'

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।

(योग० १ । २४)

'अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश (मरणभय)—इन पाँचों क्लेशों; पुण्य, पाप, पुण्य-पापमिश्रित और पुण्य-पापरहित—इन चारों कर्मों; विपाक यानी कर्मोंके फलों एवं आशय यानी कर्मोंके संस्कारोंसे जो सम्बन्धित नहीं है तथा जो समस्त पुरुषोंसे उत्तम है, वह 'ईश्वर' है ।'

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।

(योग० १ । २५)

'उस ईश्वरमें सर्वज्ञताका बीज (कारण) ज्ञान निरतिशय है यानी उसका ज्ञान सबसे बढ़कर है ।'

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

(योग० १ । २६)

'वह ईश्वर सबके पूर्वजोंका भी गुरु है; क्योंकि उसका कालसे अवच्छेद नहीं है यानी वह कालसे सर्वथा अतीत है ।'

तस्य वाचकः प्रणवः ।

(योग० १ । २७)

'उस ईश्वरका वाचक (नाम) प्रणव (ॐकार) है ।'

तज्जपस्तदर्थभावनम् ।

(योग० १ । २८)

'उस ॐकारका जप और उसके अर्थस्वरूप परमेश्वरका चिन्तन करना साधन है ।'

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।

(योग० १ । २९)

'उक्त साधनसे विघ्नोंका अभाव और आत्माके स्वरूपका साक्षात् ज्ञान भी हो जाता है ।'

अब युक्तिप्रमाण लीजिये । आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, समुद्र, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारे आदि जो बहुत-से महान् पदार्थ हैं, इन सबका जो उत्पादक (कारण), निर्माता, रक्षक और संचालक है, वही ईश्वर है; क्योंकि बिना किसी कारणके कोई कार्य नहीं होता । बिना निर्माता और संचालकके सूर्य-चन्द्र आदिका सुचारुरूपसे, युक्तियुक्त, बुद्धिपूर्वक और यथायोग्य संचालन नहीं हो सकता । कोई छोटे-से-छोटा यन्त्र भी क्यों न हो, संचालकके बिना वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, तब फिर इतना महान् यह संसारयन्त्र संचालकके बिना कैसे कायम रह सकता है तथा जीवोंके शुभा-

शुभ कर्मोंका फल देनेवाला कोई न हो तो कोई भी प्राणी अपने किये हुए अपराधका दण्ड स्वयं नहीं भोगना चाहता, जैसे बिना राजाके कोई भी अपराधी जन अपने किये हुए अपराधका दण्ड स्वयं ही ले ले ऐसा देखनेमें नहीं आता। कर्म (क्रिया) जड है, वह किसी चेतनको स्वयं दण्ड दे नहीं सकता और प्रकृति भी जड होनेके कारण बिना चेतनकी सहायताके किसीको उसके कर्मके अनुसार अनुग्रह या दण्ड-विधान नहीं कर सकती। ज्ञानपूर्वक यथायोग्य कर्मानुसार अनुग्रह या दण्डविधान कोई चेतन ही कर सकता है। भगवान् चेतनोंके भी चेतन, द्रष्टा, साक्षी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् हैं। यह युक्तिसंगत और शास्त्रसंगत है।

यदि कहें कि ईश्वर नहीं है तो यह कथन दुस्साहसमात्र है। ऐसा कहनेवालेसे पूछा जाय कि ईश्वर नहीं है इसका क्या प्रमाण है ? यदि वह कहे कि 'ईश्वर नहीं है इसका प्रमाण नहीं है तो ईश्वर है इसका प्रमाण भी संतोषजनक नहीं है, इसलिये ईश्वर है या नहीं यह संदेहयुक्त बात है' तो इस संदेहपर हमें अपनी बुद्धिसे विवेकपूर्वक विचार करके लाभ उठाना चाहिये। मान लीजिये, ईश्वर नहीं है और कोई व्यक्ति ईश्वरको मान रहे हैं तो यदि वास्तवमें ईश्वर नहीं है तो उस परिस्थितिमें जो ईश्वरको नहीं मानता और जो मानता है, उन दोनोंके लिये ही ईश्वर नहीं है। इससे जो मानता है उसके क्या हानि हुई और जो नहीं मानता उसके क्या लाभ हुआ ? इस पक्षमें तो दोनोंके लिये समान ही है। ऐसा तो है ही नहीं कि जो नहीं मानता उसे तो कोई पुरस्कार मिल जायगा या ईश्वर मिल जायँगे और जो मानता है उसे कोई दण्ड मिलेगा या ईश्वर नहीं मिलेंगे। जब ईश्वर है ही नहीं तो मिलेंगे क्या ? किंतु जो ईश्वरको मानता है यदि उसका पक्ष सत्य सिद्ध हो जाय तो उस हालतमें ईश्वरको माननेवाला ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार साधन करता है और उसे ईश्वरकी प्राप्तिरूप पुरस्कार मिल जाता है एवं वह सदाके लिये क्लेश, कर्म और दुःखोंसे मुक्त हो परमशान्ति तथा परमानन्दको प्राप्त हो जाता है। किंतु जो ईश्वरको नहीं मानता, वह इन सबसे वञ्चित रहता है और उस अपराधके कारण उसे नरकयातनारूप महान् क्लेश मिलता है। अतएव संदेहयुक्त होनेपर भी ईश्वरको मानना ही सब प्रकारसे लाभप्रद है। अतः बुद्धिमान् विवेकशील मनुष्योंको ईश्वरको मानकर श्रद्धा, विश्वास और भक्तिपूर्वक उनकी शरण होना चाहिये। भगवान् गीतामें बतलाते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
(गीता १८। ६१-६२)

'अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। भारत ! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परमशान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा।'

(२) ज्ञानी महात्मा पुरुषपर श्रद्धा-विश्वास

हमें यह भी श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये कि ज्ञानी महात्मा पुरुष भी बहुत-से हुए हैं, वर्तमानमें भी हैं और भविष्यमें भी होंगे। जो कर्मयोग, भक्तियोग या ज्ञानयोगके द्वारा परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं वे महान् पुरुष उच्चकोटिके ज्ञानी महात्मा समझे जाते हैं। जो कर्मयोगके द्वारा महापुरुष हुए हैं उनके लक्षण गीतामें इस प्रकार बतलाये गये हैं—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥
(गीता २। ५५-५६)

'अर्जुन ! जिस कालमें यह पुरुष मनमें स्थित सम्पूर्ण कामनाओंको भलीभाँति त्याग देता है और आत्मासे आत्मामें ही संतुष्ट रहता है, उस कालमें वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जो राग, भय और क्रोधसे रहित है, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।'

इसके आगे भी ५७ वें, ५८ वें तथा अन्य कई श्लोकोंमें उनके लक्षणोंका वर्णन है। एवं छठे अध्यायमें भी उनके लक्षण बतलाये गये हैं—

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥
सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥
(गीता ६ । ७—९)

'सरदी-गरमी और सुख-दुःखादिमें तथा मान और अपमानमें जिसके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ भलीभाँति सम और शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके ज्ञानमें सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् प्रकारसे स्थित है अर्थात् उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं । जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है—ऐसे कहा जाता है । सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणोंमें, धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी समानभाव रखनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठ है ।'

जो भक्तिमार्गसे भगवान्‌को प्राप्त हुए, उनके लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
(गीता १२ । १३-१४)

'जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है ।'

आगे १५ वें से १९ वें श्लोकतक उनके लक्षणोंका और भी वर्णन है ।

इसी प्रकार जो ज्ञानमार्गसे परमात्माको प्राप्त हुए, उनके लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥
(गीता ५ । १८-१९)

'वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं । जिनका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है; क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं ।'

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥
(गीता १४ । २४-२५)

'जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है, एवं जो मान और अपमानमें सम है, मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है एवं सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है ।'

इसके पूर्व २२ वें, २३ वें श्लोकोंमें और अन्य अध्यायोंमें भी इनके लक्षण बताये गये हैं ।

ये लक्षण जिनमें हों, ऐसे ज्ञानी महात्मा पुरुषोंके आचरणोंका हमलोगोंको अनुकरण करना चाहिये एवं श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये । भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
(गीता ३ । २१)

' श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करता है । वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है ।'

इस प्रकार ज्ञानी महात्माओंको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करनेपर या उनकी आज्ञाके अनुसार श्रद्धा-भक्ति-

पूर्वक चलनेपर अविवेकी अज्ञानी पुरुषका भी कल्याण हो जाता है। भगवान् कहते हैं—

> अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
> तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥
> (गीता १३। २५)

'(ध्यानयोगी, सांख्ययोगी और कर्मयोगीके अतिरिक्त) अन्य जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं वे तो इस प्रकार न जानते हुए भी दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निस्संदेह तर जाते हैं।'

हाँ, यह बात अवश्य है कि ऐसा ज्ञानी महात्मा पुरुष लाखों-करोड़ों मनुष्योंमें कोई एक ही होता है—

> मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
> यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
> (गीता ७। ३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।'

इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसे महापुरुष कम हैं, किंतु हैं अवश्य। महापुरुष संसारमें सदासे होते आये हैं और वर्तमानमें भी हैं; किंतु वे श्रद्धा-प्रेमसे ही मिलते हैं। भगवान् भी श्रद्धा-प्रेमके बिना नहीं मिलते। अतएव उपर्युक्त लक्षणोंवाले ज्ञानी महात्माओंकी श्रद्धापूर्वक खोज करनी चाहिये। यदि कहें कि उनकी पहचान हम कैसे करें तो इसके लिये यह बहुत बलवती युक्ति है कि जिनके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन करनेसे महात्माओंके उपर्युक्त लक्षण हममें आने लगें, हमारे लिये वे ही महात्मा हैं। इसके सिवा और उपाय ही क्या है। यदि कोई महापुरुष कहें कि मैं महात्मा हूँ तो उनके इस कथनपर श्रद्धा होती नहीं, बल्कि पहलेसे उनपर कुछ श्रद्धा रहती है तो वह भी इस कथनके बाद कम हो जाती है। और हम उनको लक्षणोंसे पहचान नहीं सकते; क्योंकि यह विषय स्वसंवेद्य है परसंवेद्य नहीं। महात्मा स्वयं ही अपने-आपको जानते हैं। महात्माओंके भीतरके लक्षण ही प्रधान होते हैं। बाहरके लक्षण तो कोई दम्भी पुरुष दम्भसे भी दिखला सकता है। महात्मा समदर्शी होते हैं, हेतुरहित दयालु और प्रेमी होते हैं, उनका अपना किसीके साथ भी किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थ नहीं रहता है। उनके सारे कर्म लोकसंग्रह यानी संसारके कल्याणके लिये होते हैं। ऐसा होनेपर भी साधारण मनुष्य उनको पहचान नहीं सकता। जो कुछ जान सकता है वह भक्ति और विश्वासपूर्वक परम श्रद्धासे ही जान सकता है। मनुष्य जब महात्माको जान ले तो फिर उसे उनके पास जाकर जिज्ञासा-पूर्वक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

> तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
> उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
> (गीता ४। ३४)

'उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।'

जो साधक श्रद्धेय महात्मा पुरुषकी आज्ञाके अनुसार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आचरण करता है वह श्रद्धालु कहा जाता है। उससे भी श्रेष्ठ श्रद्धालु वह है जो महात्माके संकेतके अनुसार चलता है। उससे भी श्रेष्ठ श्रद्धालु वह है जो महात्माके सिद्धान्तके अनुसार चलता है। एवं वह तो सर्वश्रेष्ठ श्रद्धालु है जो महात्माके मनोऽनुकूल चलता है। यदि कहें कि महात्माके मनके भावोंका कैसे पता लग सकता है तो इसका उत्तर यह है कि जो श्रद्धालु मनुष्य सदा महात्माकी आज्ञा, संकेत और सिद्धान्तके अनुसार चलता रहता है उसे उनके मनके भाव मालूम होते रहते हैं। ऐसे परम श्रद्धालु मनुष्यको महात्माके वचनोंमें प्रत्यक्षसे भी बढ़कर श्रद्धा होती है। प्रत्यक्षमें चूना, सीमेंट, ईंटका बना हुआ एक मकान दीख रहा है। उसको यदि महात्मा सोनेका मकान बतलाता है तो उस श्रद्धालुको वह मकान सचमुच सोनेका ही दीखने लगता है। यह है महात्मामें परम श्रद्धा! ऐसे परम श्रद्धालु मनुष्यके लिये महात्माके दर्शन, भाषण, चरणस्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन सभी कल्याणकारक होते हैं।

जैसे एकलव्य भीलकी द्रोणाचार्यमें परम श्रद्धा थी, जिसके प्रभावसे वह बाणविद्यामें अर्जुनसे भी बढ़कर हो गया (देखिये महा० आदि० अ० १३१)। जैसे जबालाके पुत्र सत्यकामकी महर्षि हारिद्रुमत गौतममें परम श्रद्धा थी, जिसको गुरु-आज्ञा-पालनके प्रभावसे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो गयी (देखिये छान्दोग्य उप० ४। ४–९)। जैसे उपकोसलकी सत्यकाममें परम श्रद्धा

थी, जिसको गुरुसेवाके प्रभावसे अग्नियोंद्वारा ब्रह्मकी प्राप्ति हो गयी (देखिये छान्दोग्य उप० ४ । १०–१४) । एवं जैसे राजा द्रुपद और उसकी पत्नीकी श्रीशिवजीके वचनोंमें परम श्रद्धा थी, जिसके प्रभावसे उनके यहाँ कन्याके रूपमें पैदा हुई शिखण्डिनी 'शिखण्डी' नामक पुरुषके रूपमें बदल गयी (महा० उद्योग० १८८–१९२) । इसी प्रकार हमलोगोंको महात्मामें परम श्रद्धा करके लाभ उठाना चाहिये ।

उपर्युक्त लक्षणोंवाले श्रद्धेय महापुरुषमें भी श्रद्धा होनी सहज नहीं है, किंतु भगवान्‌की या महापुरुषोंकी कृपासे ही उनमें श्रद्धा होती है । श्रद्धा हटनेमें तो कोई कठिनाई नहीं है । दोषदृष्टि करनेसे, दोषोंकी बात सुननेसे, नास्तिक अश्रद्धालुओंके संगसे श्रद्धा हटनी स्वाभाविक ही है । इसलिये किसी भी मनुष्यके दोषोंको न तो कहे, न सुने और न हृदयमें स्थान ही दे । पर-दोषदर्शन आदिमें लाभ तो है ही नहीं, बल्कि हानि-ही-हानि है । दोषोंके दर्शन, श्रवण, कथन, मननसे उनके संस्कार हृदयमें जम जाते हैं जिससे वे दोष भविष्यमें उस व्यक्तिमें भी घट सकते हैं । तथा जिसकी निन्दा की जाती है उसकी आत्माको दुःख पहुँचता है; इसलिये पर-दोष-चर्चासे पाप भी लगता है । दोषीके दोषकी चर्चा करनेसे उसके दोषका हिस्सा भी चर्चा करनेवालेको प्राप्त होता है । यह तो मनुष्यमात्रकी बात हुई । फिर ईश्वर और ज्ञानी महात्मा पुरुष तो स्वाभाविक ही निर्दोष हैं । निर्दोष व्यक्तिमें दोषकी कल्पना करनेसे और भी अधिक दोष लगता है इसलिये परदोष-दर्शनसे तो कल्याणकामी मनुष्यको सदा दूर ही रहना चाहिये ।

(३) गीतादि शास्त्रोंपर श्रद्धा-विश्वास

हमलोगोंको गीतादि शास्त्रोंपर इस प्रकार श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये कि उनमें जो भी उपदेश हैं वे सत्य एवं कल्याणकारक हैं । ऐसा समझकर श्रुति एवं ऋषिप्रणीत स्मृति, इतिहास-पुराण तथा गीता आदि जितने भी शास्त्र हैं उनमें बतलायी हुई भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, कर्मयोग, सदाचार आदिकी सार-सार बातोंको श्रद्धा-भक्ति और विश्वासपूर्वक काममें लानेकी चेष्टा करनी चाहिये । उदाहरणके लिये श्रीमद्भगवद्गीताको ही ले लीजिये । गीता सर्वशास्त्रमयी है । महाभारतमें बतलाया गया है—

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः ॥
(महा० भीष्म० ४३ । २)

'गीता सर्वशास्त्रमयी है, श्रीहरि सर्वदेवमय हैं, गङ्गा सर्वतीर्थमयी हैं और मनु सर्ववेदमय हैं ।'

गीता सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार है एवं सारे उपनिषदोंका भी सार है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥
(गीतामाहात्म्य)

'सम्पूर्ण उपनिषद् गौएँ हैं, गोपालनन्दन श्रीकृष्ण उनको दुहनेवाले हैं, अर्जुन ही बछड़े हैं, श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न मनुष्य ही दुग्धपान करनेवाले हैं और गीतारूप महान् अमृत ही दुग्ध है ।'

गीताकी बड़ी भारी महिमा है । जो गीताके अर्थ और भावको समझकर स्वाध्याय करता है उसके द्वारा भगवान् ज्ञानयज्ञसे पूजित होते हैं—यह स्वयं भगवान् ही कहते हैं—

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥
(गीता १८ । ७०)

'जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनोंके संवादरूप गीता-शास्त्रको पढ़ेगा उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा—ऐसा मेरा मत है ।'

गीता गङ्गासे भी बढ़कर है । गङ्गामें स्नान करनेवाला तो स्वयं ही मुक्त होता है किंतु गीतारूप गङ्गामें स्नान करनेवाला तो दूसरोंको भी मुक्त कर देता है । जो मनुष्य गीताका नित्य पाठ करता है उससे वह श्रेष्ठ है जो उसके अर्थ और भावको समझकर पाठ करता है किंतु वह तो सर्वश्रेष्ठ है जो उसके उपदेशके अनुसार अपना जीवन बनाता है । अतः गीताको अपने जीवनमें लानेके लिये इसका अच्छी प्रकार अभ्यास करना चाहिये । श्रीवेदव्यासजी कहते हैं—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिस्सृता ॥
(महा० भीष्म० ४३ । १)

'अन्य शास्त्रोंके संग्रहकी क्या आवश्यकता है, केवल गीताका ही भली प्रकारसे अर्थ और भाव समझते हुए गान करना चाहिये; क्योंकि यह भगवान् विष्णुके साक्षात् मुख-कमलसे प्रकट हुई है ।'

गीताका अच्छी प्रकार अभ्यास कर लेनेपर आत्मोद्धारके

लिये अन्य शास्त्रोंकी आवश्यकता नहीं रहती। यह कथन शास्त्रोंकी अवहेलनाके लिये नहीं है। यह तो गीताकी विशेषता दिखलानेके लिये ही कहा गया है।

गीतामाहात्म्यमें बताया गया है—

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः॥

'जो मनुष्य मन-इन्द्रियोंके संयमपूर्वक इस पुण्यमय गीताशास्त्रका पठन करता है वह भय, शोक आदिसे रहित हो श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है।'

गीतामें भी भगवान्ने स्वयं इसे शास्त्र कहा है—

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत॥
(गीता १५। २०)

'निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरेद्वारा कहा गया, इसको तत्त्वसे जानकर मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो जाता है।'

इस गीताका जो संसारमें प्रचार करता है, उसकी तो भगवान्ने और भी विशेष महिमा बतलायी है—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
(गीता १८। ६८)

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा— इसमें कोई संदेह नहीं है।'

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥
(गीता १८। ६९)

'उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।'

गीतामें भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग और सदाचारकी बातें भरी हुई हैं। अतः जो श्रद्धा-भक्ति और विश्वासपूर्वक इसका श्रवण, मनन और अध्ययन करके उसके अनुसार आचरण करता है उसके कल्याणमें कोई शङ्का नहीं है, किंतु जो शास्त्रकी मर्यादाको छोड़कर मनमाना आचरण करता है उसके किये हुए अच्छे कर्म निष्फल और व्यर्थ हो जाते हैं—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
(गीता १६। २३)

'जो पुरुष शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है वह न सिद्धिको प्राप्त होता है न परमगतिको और न सुखको ही।'

शास्त्रकी मर्यादाके बिना भी स्वाभाविक श्रद्धा भी होती है। श्रद्धाके विषयमें अर्जुनने गीताके सत्रहवें अध्यायके प्रथम श्लोकमें प्रश्न किया है कि शास्त्रमर्यादाके बिना मनुष्य जो यज्ञ, पूजा आदि करता है, उसका वह कर्म सात्त्विक है या राजस अथवा तामस। अर्जुनके इस प्रश्नपर ये चार प्रश्न उठते हैं—(१) जिसमें शास्त्रमर्यादा भी नहीं है और श्रद्धा भी नहीं है, वह कर्म कैसा है? (२) जिसमें शास्त्रमर्यादा और श्रद्धा दोनों है, वह कर्म कैसा है? (३) जिसमें शास्त्रमर्यादा तो है किंतु श्रद्धा नहीं है, वह कर्म कैसा है? (४) जिसमें श्रद्धा तो है किंतु शास्त्रमर्यादा नहीं है वह कर्म कैसा है? इसके उत्तरमें भगवान्ने यही बतलाया है कि (१) जिसमें शास्त्रमर्यादा और श्रद्धा दोनों ही नहीं हैं वह कर्म तामसी है (देखिये १७। १३); (२) जिसमें ये दोनों हैं वह कर्म सात्त्विक भी होता है और राजस भी। शास्त्रविधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक निष्काम भावसे किया हुआ कर्म सात्त्विक है (देखिये गीता १७। ११) और शास्त्रविधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक सकाम भावसे किया हुआ कर्म राजस है (देखिये १७। १२)। (३) जिसमें शास्त्रमर्यादा तो है किंतु श्रद्धा नहीं है वह कर्म असत् है (देखिये १७। २८।) (४) जिसमें श्रद्धा तो है किंतु शास्त्रमर्यादा नहीं है वह कर्म सात्त्विक, राजस, तामस तीनों प्रकारका होता है (देखिये १७। २)।

अतः हमलोगोंको गीतादि शास्त्रोंके अनुसार श्रद्धा-भक्ति और विश्वासपूर्वक निष्कामभावसे तत्परताके साथ कर्तव्य कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये।

(४) अपनी आत्मापर श्रद्धा-विश्वास

प्रथम यह विश्वास करना चाहिये कि मनुष्य जो कुछ बुरा या भला अथवा बुरा-भला मिला हुआ कर्म करता है उसका फल उसको इस जन्ममें और भावी जन्ममें अवश्य मिलता है। किंतु जो निष्कामभावसे कर्म किया जाता है उसका फल कहीं नहीं मिलता। भगवान् कहते हैं—

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥

(गीता १८ । १२)

'कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका तो अच्छा, बुरा और मिला हुआ—ऐसे तीन प्रकारका फल मरनेके पश्चात् अवश्य होता है, किंतु कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका फल किसी कालमें भी नहीं होता ।'

इससे यह सिद्ध होता है कि मरनेके बाद भी परलोक है । जो ऐसा समझता है उसके द्वारा कभी पापकर्म नहीं हो सकता; क्योंकि वह जानता है कि शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि ॥

'अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल मनुष्यको अवश्य भोगना पड़ता है । फल भोग किये बिना सौ करोड़ जन्मोंमें भी कर्मका क्षय नहीं होता है ।' यदि कहें कि जप-तप आदिके रूपमें प्रायश्चित्त करनेपर पापकर्मोंका फल नहीं भोगना पड़ता सो ठीक है—यह प्रायश्चित्त भी तो एक प्रकारका कर्मफल-भोग ही है ।

मरनेके बाद आत्मा अवश्य है—इसमें श्रद्धा-विश्वास करना यह अपनी आत्मापर श्रद्धा-विश्वास करना है । मरनेके बाद आत्मा निश्चय है ही । भगवान् कहते हैं—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

(गीता २ । १२)

'न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे ।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

(गीता २ । १३)

'जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता ।'

न जायते म्रियते वा कदाचिन्-
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

(गीता २ । २०)

'यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है ; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता ।' वेदोंमें भी बतलाया गया है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

(शुक्लयजुर्वेद अ० ४० मं० ३)

'जो कोई भी मनुष्य आत्माका हनन करनेवाले होते हैं, वे मरकर नाना प्रकारकी आसुरी योनियों तथा असुरोंके उन भयंकर लोकोंको बारंबार प्राप्त होते हैं जो अज्ञान—दुःख-क्लेशरूप महान् अन्धकारसे आच्छादित हैं ।'

परलोक युक्तिसे भी सिद्ध है । जब बच्चा जन्मता है तब वह जन्मते ही रोता है; क्योंकि जन्मके समय उसको महान् कष्टका अनुभव होता है—यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है । कभी-कभी बच्चा हँसता भी है इससे अनुमान होता है कि उसे सुखका अनुभव होता है; क्योंकि जब-जब उसे पूर्वजन्ममें दुःख हुआ है तब-तब वह रोया है और जब-जब सुख हुआ है तब-तब हँसा है । इस जन्ममें तो उसको रोने या हँसनेकी कोई शिक्षा मिली नहीं और न माताके उदरमें ही मिली । अतः इसमें उसका पूर्वजन्मका रोने या हँसनेका अभ्यास ही कारण है । इससे भी पूर्वजन्म सिद्ध होता है और पूर्वजन्मके साथ ही यह वर्तमान जन्म उसके लिये भावी जन्म सिद्ध हो गया । तथा जब माँ बच्चेके मुँहमें स्तन देती है तो स्तन मुखमें देनेमात्रसे तो दूध उसके पेटमें नहीं जाता, बच्चा स्वयं दूधको खींचता है तभी दूध पेटमें जाता है । दूध खींचनेकी इस प्रक्रियामें वह पूर्वजन्मसे ही अभ्यस्त है । बच्चा सोता भी है तथा कभी-कभी मृत्युके भयसे भीत हो काँपता भी है; क्योंकि वह पूर्वमें बहुत बार मर चुका है । ये सब बातें उसने इस जन्ममें तो कहीं सीखीं नहीं । अतः इन सब संस्कारोंसे भी उसका पूर्वजन्म सिद्ध हो जाता है ।

संसारमें कोई पशु-पक्षी और कोई मनुष्य, कोई सुखी और कोई दुखी, कोई गरीब और कोई धनी, कोई रोगी और कोई नीरोग होता है । ये सब उसे जन्मसे ही प्राप्त हैं तो इस

जन्ममें तो छोटे बच्चेने कोई कर्म किया ही नहीं, जिसका यह फल हो । अतः इसके पूर्वजन्मोंके कर्मोंके अनुसार ही यह सब होता है—ऐसा मानना होगा; क्योंकि इस प्रकारकी विषमताका अन्य कोई कारण नहीं दिखायी देता । इन सब युक्तियोंसे भी पूर्वजन्म और भावी जन्म सिद्ध हो जाता है ।

अतः अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको दुर्गुण-दुराचार और दुर्व्यसनोंका त्याग करके भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सद्गुण, सदाचारका श्रद्धापूर्वक निष्कामभावसे आचरण करना चाहिये । इस प्रकार करनेसे मनुष्यका इसी जन्ममें कल्याण हो सकता है । यदि कुछ कमी रह गयी और पहले ही मृत्यु हो गयी तो भावी जन्ममें निश्चय ही कल्याण हो सकता है । भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

(गीता ६ । ४३)

'वहाँ उस पहले शरीरमें संग्रह किये हुए बुद्धिसंयोगको अर्थात् समबुद्धिरूप योगके संस्कारोंको अनायास ही प्राप्त हो जाता है और कुरुनन्दन अर्जुन ! उसके प्रभावसे वह फिर परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये पहलेसे भी बढ़कर प्रयत्न करता है ।'

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥

(गीता ६ । ४४)

'वह योगभ्रष्ट श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेके कारण विषयोंके पराधीन हुआ भी उस पहलेके अभ्याससे ही निस्संदेह भगवान्‌की ओर आकर्षित किया जाता है तथा समबुद्धिरूप योगका जिज्ञासु भी वेदमें कहे हुए सकाम कर्मोंके फलको उल्लङ्घन कर जाता है । अर्थात् संसारसागरसे तर जाता है ।'

यदि कहें कि शास्त्र और युक्तिको हम नहीं मानते । परलोक है या नहीं—यह मालूम नहीं तो इस प्रकारका संदेह होनेपर भी परलोकको माननेमें ही बुद्धिमानी और लाभ है; क्योंकि जिस प्रकार ऊपर युक्तिसे यह सिद्ध हो गया कि ईश्वरको माननेवाला ही लाभमें रहता है, न माननेवालेको हानि-ही-हानि है, वैसे ही परलोकको माननेवाला ही लाभमें रहता है, न माननेवालेको हानि-ही-हानि है ।

यदि ईश्वर, महात्मा, शास्त्र और युक्तिपर भी विश्वास न हो तो मनुष्यको कम-से-कम अपनी आत्मापर तो अवश्य ही विश्वास करना चाहिये । यह भी आत्मापर विश्वास करना है कि अपने अन्तःकरणमें मनुष्य जिस बातको अच्छा समझे उसको तो काममें लावे और जिसको बुरा समझे उसका सर्वथा त्याग करे । यह तो प्रत्यक्ष अनुभवकी बात है कि जो कोई आपपर अत्याचार करता या आपके साथ बुरा व्यवहार करता है तो वह आपके दिलमें अखरता है, ऐसा व्यवहार करनेवाला आपकी दृष्टिमें बहुत ही नीचे दर्जेका आदमी है । इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि आप किसीके साथ कभी ऐसा बुरा व्यवहार न करें । एक दूसरा आदमी आपके साथ अच्छा व्यवहार करता है, सेवा करता है, सुख पहुँचाता है, आपके मनके अनुकूल कार्य करता है या आपका परम हितैषी है तो आपकी दृष्टिमें वह बहुत भला आदमी है—यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है । इससे आपको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि आप भी सबके साथ ऐसा ही सद्व्यवहार करें । इसके सिवा आपके सामने अन्य कोई भी कार्य आकर प्राप्त हो उसके विषयमें आप अपनी आत्मामें विचार करते रहें और जिसको आपकी आत्मा बुरा स्वीकार करे उसका आप सर्वथा त्याग कर दें एवं जिसको अच्छा समझे, उसका आप प्रयत्नपूर्वक सेवन करें ।

उदाहरणके लिये एक ओर ब्रह्मचर्य-पालन है; दूसरी ओर व्यभिचार । इन दोनोंके विषयमें आत्मासे पूछा जायगा तो यही उत्तर मिलेगा कि ब्रह्मचर्य-पालन बहुत उत्तम है, व्यभिचार बहुत ही नीच कर्म है । अतः ब्रह्मचर्यपालन करे, व्यभिचार कभी न करे । इसी प्रकार एक ओर दूसरेको सुख पहुँचाना, परोपकार, सेवा और हित करना है, दूसरी ओर दूसरेका अनिष्ट करना, उसे हर प्रकारसे दुःख पहुँचाना, अहित करना है । इस विषयमें आत्मासे पूछा जायगा तो यही उत्तर मिलेगा कि दूसरोंको सुख पहुँचाना, परोपकार, सेवा और हित करना ही श्रेष्ठ है और दूसरेका अनिष्ट करना, दुःख पहुँचाना, अहित करना अत्यन्त बुरा है । अतः परोपकार, सेवा, हित आदि करे, दूसरोंको सुख पहुँचावे, दूसरोंका अनिष्ट न करे, किसी भी प्राणीको कभी किंचिन्मात्र भी दुःख न पहुँचावे, अहित न करे । इसी तरह एक ओर सत्य, प्रिय, हितकर वचन है, दूसरी ओर असत्य, कठोर, अहितकर वचन है । इन दोनोंके सम्बन्धमें आत्मासे पूछा जायगा तो यही उत्तर मिलेगा कि सत्य, प्रिय, हितकर वचन ही उत्तम है,

असत्य, अप्रिय, अहितकर वचन अत्यन्त बुरा है। अतः इसको सदा सत्य, प्रिय, हितकर वचन ही बोलना चाहिये, असत्य, अप्रिय, अहितकर वचन कभी नहीं बोलना चाहिये, इसी प्रकार अन्य सभीके विषयमें अपनी पवित्र और पक्षपातरहित बुद्धिसे विचार करके अपनी आत्मामें जो भाव या क्रिया अच्छी निर्णय हो उसे कटिबद्ध होकर तत्परतासे काममें लाना चाहिये तथा जो भाव या क्रिया अपनी आत्मामें बुरी निर्णय हो उसका सर्वथा त्याग करना चाहिये। उपर्युक्त प्रकारसे विवेचन करके जो संसारमें स्वार्थ, आसक्ति और अभिमानसे रहित हो आचरण करता है, उस अपनी आत्मापर श्रद्धा-विश्वास करनेवाले मनुष्यका भी कल्याण हो जाता है।

ऊपर बतलाये हुए ईश्वर, ज्ञानी महात्मा, गीतादि शास्त्र और अपनी आत्मा—इन चारोंमेंसे किसी एकपर भी श्रद्धा-विश्वास होनेसे कल्याण हो सकता है; तब फिर चारोंपर श्रद्धा-विश्वास होनेसे कल्याण हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है। गुण-बुद्धिसे श्रद्धा बढ़ती है और अवगुणबुद्धिसे श्रद्धा घटती है, इसलिये कल्याणकामी पुरुषको सबमें गुण-बुद्धि करनी चाहिये, अवगुण-बुद्धि किसीमें भी नहीं करनी चाहिये।

तज पर अवगुन नीरको छीर गुननिसौं प्रीति।
हंस संतकी सवदा 'नारायण' यह रीति॥

व्रज और वल्लभ-सम्प्रदाय

(लेखक—श्रीमाधवजी गोस्वामी)

यद्यपि वल्लभ-सम्प्रदायका मूल स्रोत दक्षिण भारत है, यह बात सत्य है, तथापि धर्मसाधनाका इतिहास देखनेपर यह निष्कर्ष निकलेगा कि वल्लभ-सम्प्रदायका पूर्णरूपेण विकास एवं प्रसार तो उत्तर भारतीय व्रज-प्रदेशमें ही हुआ है।

शुद्धाद्वैत ब्रह्मवादके आदि स्रष्टा महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण जब भारत-भूमिका परिभ्रमण करते हुए व्रज-मण्डलमें पधारे, तब मथुरामें उनके तीर्थपुरोहित उजागर चौबे थे। दिल्लीके राज्यासनपर उस समय सिकन्दर लोदी आरूढ़ था। उसने हिंदुओंपर व्रजपरिक्रमा करनेके लिये प्रतिबन्ध लगा रक्खा था। श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंने जब अपने पुरोहितके सामने व्रजयात्राकी इच्छा प्रकट की, तब पुरोहित उजागर चौबेने यह निवेदन किया कि यात्रा करनेमें राज्यकी ओरसे प्रतिबन्ध है। कुछ समयके पश्चात् जब श्रीमहाप्रभुजीके दर्शन बादशाह सिकन्दर लोदीने किये, तब वह आपके प्रभावसे प्रभावित हो गया और उसने अपने राज्यके चित्रकार होनहारको आचार्यचरणोंका चित्र बनानेकी आज्ञा दे दी। उसी समयसे प्रत्येक हिंदूके लिये व्रजयात्रा करनेका मार्ग खुल गया और सभी लोग आनन्दपूर्वक धर्मकार्य करनेमें प्रवृत्त हो गये; राज्यकी ओरसे कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा।

श्रीमन्महाप्रभुने उसी समय ८४ कोशकी व्रजपरिक्रमा की और व्रजका महत्त्व बढ़ाया। श्रीगोवर्धनगिरिसे श्रीगोवर्द्धनधारी श्रीनाथजीका प्राकट्य हुआ, श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञासे एवं स्वप्नमें की गकी श्रीनाथजीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके आपके अनन्य सेवक पूरनमल्ल क्षत्रियके द्वारा गोवर्धन पर्वतपर मन्दिर निर्माण हुआ। आचार्यचरणोंने उस मन्दिरमें श्रीनाथजीको पधराकर सेवाप्रकार आरम्भ किया।

श्रावण शुक्ला एकादशीकी मध्यरात्रिको श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण गोकुल ठकुरानीघाटपर पौढ़े हुए थे, तब साक्षात् श्रीनाथजीने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कहा कि 'कलिप्रवाहके कलुषित वातावरणकी ओर बढ़ते हुए जीवोंको शरण लेकर उन्हें सर्वोच्च भूमिकाका दिग्दर्शन कराकर उनका उद्धार करो।' साक्षात् प्रभुके श्रीमुखसे पञ्चाक्षर गद्यमन्त्रकी आज्ञा पाकर लोकोद्धारके लिये श्रीमहाप्रभुजीने आत्मनिवेदनका प्रकार प्रचलित किया और अनेकों दैवी जीवोंका उद्धार किया। तभीसे आपका नाम 'दैवोद्धारप्रयत्नात्मा' प्रसिद्ध हो गया। व्रजमें आपके चार सेवक भक्त कवि हुए—श्रीसूरदासजी, कुंभनदासजी, परमानन्ददासजी और कृष्णदासजी। ये चार महानुभाव अष्टछाप कवियोंके प्रारम्भके चार कवि हैं।

सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणके द्वितीय पुत्र गुसाँईजी श्रीविट्ठलनाथजी (चुनार) चरणाटमें प्रकट हुए। वल्लभ-सम्प्रदायका सर्वाङ्गीण विकास इन्हींके समयमें हुआ।

श्रीमहाप्रभुजीके तिरोधानके बाद श्रीगुसाँईजी विट्ठलनाथजीने अधिकतर अपना जीवनकाल व्रजमें ही व्यतीत किया। श्रीनाथजीका सम्पूर्ण सेवाप्रकार, ऋतु-अनुसार शृंगार, वस्त्र, भोग, कीर्तन आदि समस्त प्रकार आपने प्रचलित

किये । गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास एवं नंददास —ये चार अष्टछापके भक्तकवि आपके ही सेवक हुए। श्रीगुसाँईजी अपने सातों पुत्रोंसहित कुछ समय गोकुल भी विराजे, कुछ कालतक गोपालपुर भी विराजे तथा कुछ समय तक मथुराके सतघरेमें भी रहे ।

यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि भारतीय कलाके विकासमें वल्लभ-सम्प्रदायको जो अग्रस्थान दिया जा रहा है तो यह गुसाँईजी श्रीमद्विठ्ठलनाथजीके ही प्रयत्नोंका सुपरिणाम है। आज भी सम्प्रदायमें उन प्राचीन कलाओंका सुचारु-रूपसे संरक्षण हो रहा है। वल्लभसम्प्रदायमें चित्रकलाका विकास सर्वाधिक हुआ है । हमारे मन्दिरोंमें चित्रित पिछवाइयोंमें अङ्कित विविध भगवल्लीलाओंके जैसे चित्र उपलब्ध होते हैं, वैसे अन्यत्र कहीं नहीं मिलते ।

संगीतका सर्वतोमुखी विकास एवं उसका प्रसार तो सोलहवीं शतीमें व्रजभूमिमें वल्लभ-सम्प्रदायमें ही हुआ है जब कि सूरदासादि अष्टछाप महानुभावोंकी स्वर-साधना भारतके कोने-कोनेमें गूँज रही थी। उस कालमें श्रीप्रभुचरणोंके दिव्य प्रतापसे प्रभावित बादशाह अकबर भी पुष्टिमार्गके प्रति आदर-दृष्टिसे देखता था। महानुभाव अष्टछाप भक्त कविगण श्रीगिरिराजपर स्थित मन्दिरमें श्रीनाथजीके सम्मुख आठों दर्शनोंमें ऋतुके अनुसार पद गाया करते थे। एक बार राजा मानसिंह कुम्भनदासजीके पदोंको सुनकर बड़े प्रभावित हुए और उनकी कुटियापर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि कुम्भनदासजीके पास आरसी नहीं है और वे जलमें प्रतिबिम्ब देखकर तिलक लगा रहे हैं। तब राजा मानसिंहने अपने पाससे स्वर्णकी आरसी समर्पित करते हुए पूछा कि 'आप क्या चाहते हैं ?' प्रत्युत्तरमें उन्होंने यह कहा कि 'मैं यह चाहता हूँ कि भविष्यमें तुम अपना मुख मत दिखाना। तुम्हारे यहाँ आनेपर मेरा भगवद्भजन छूट जाता है ।' भक्तकविकी इतनी त्यागमयी वृत्ति देखकर राजा मान मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए । बादशाह अकबरने एक बार कुम्भनदासजीको गानेके लिये फतहपुर-सीकरी बुलाया । क्लिष्ट मनसे वे वहाँ गये । बादशाहके सम्मुख उन्होंने निर्भीकतासे यह पद गाया—

भक्त को कहा सीकरी काम ।
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयौ हरिनाम ॥
जा को मुख देखत दुख उपजे ता को करन परयो प्रनाम ।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु यह सब झूठो धाम ॥

भक्तके निर्भीक वचनोंके आगे बादशाह कुछ न कह सके। धन्य हैं श्रीहरिकी चिरन्तन साधनामें रत ऐसे महामहिम भक्तोंकी पुनीत पद-रजको ।

एक समय भारतके संगीतसम्राट तानसेन श्री-गुसाईंजीके पास आये। उन्होंने अपनी कला आपके सामने प्रदर्शित की । कलाकी प्रशंसा करते हुए श्रीगुसाँईजीने उनको बहुत द्रव्य प्रदान किया, साथमें एक कौड़ी भी दी । जब तानसेनने इसका कारण पूछा, तब आपने यह बतलाया कि 'भक्तिरससे ओत-प्रोत हमारे अष्टसखा कवियोंके आगे भगवद्रससे विहीन तुम्हारा यह लोकग्राही संगीत एक कौड़ी बराबर ही है।' आपके मर्मवाक्य सुनते ही तानसेनने अष्ट-सखाओंकी भक्ति-काव्यधाराके निर्मल प्रवाहसे आप्लावित पद-रचना सुननेकी इच्छा प्रकट की । उसी समय प्रभुचरणोंने गोविन्द स्वामीको बुलाया; उन्होंने 'श्रीवल्लभरूप-अनूप स्वरूप कह्यौ न जाई' यह मधुरतम पद गाकर तानसेनको सुनाया। पद सुनते ही तानसेन भावके आवेशमें मुग्ध-से हो गये।

उस युगमें जब स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजूगोपाल आदि स्वर-साधनामें रत महापुरुषोंकी स्वरमयी मधुरतम वाणी उत्तराखण्डको भक्तिरसके प्रोज्वल निर्मल प्रवाहसे आप्यायित कर रही थी, तब व्रजमण्डलमें सूरदास आदि अष्टछाप महानुभावोंकी भक्ति-रससे ओतप्रोत काव्यधारा, भक्ति-रसकी एक अविरत तरंगिणी मानव-हृदयकी कोमल चातक-वृत्तियोंके साथ घुल-मिलकर मानव-जीवनको एक आध्यात्मिक शक्ति, दिव्य प्रेरणा एवं अमरता प्रदान कर रही थी। उन महान् विभूतियोंके पद-चिह्नोंपर चलकर उनके अलौकिक जीवनकी आलोक-रेखाएँ लेकर अन्धकारमय तमससे व्याप्त धूमिल जगत्में भटकते हुए अन्य मध्यकालीन कविगण भी वर्तमान हिंदीसाहित्य-जगत्में अपनी अमर रचनाओंके द्वारा अविचल स्थान पानेमें समर्थ हुए ।

सम्राट् अकबरके ऊपर श्रीप्रभुचरणोंकी किस प्रकार अनुकम्पा हुई, यह बात हम इतिहासके अवलोकन एवं साम्प्रदायिक वार्तासाहित्यके अध्ययनसे जान सकेंगे । यहाँ एक उदाहरणसे ही यह बात सिद्ध हो जाती है ।

जन्माष्टमीके अवसरपर एक बार बीरबल गोकुल आये । बादशाह भी दिल्लीसे उनके पीछे-पीछे अज्ञातावस्थामें गोकुल आ गये । वहाँ नन्दमहोत्सवमें श्रीनवनीतप्रियजीको

श्रीविट्ठलनाथजी पलना झुला रहे थे। श्रीछीतस्वामी 'प्रिय नवनीत पालने झूलें श्रीबिट्ठलनाथ झुलावें हो' यह राग आसावरीका कीर्तन बोल रहे थे। दर्शन होनेके बाद बाहर आकर बीरबलने बादशाहसे पूछा—'आज श्रीगुसाईंजी श्रीठाकुरजीको पलनेमें झुला रहे थे आपने देखा?' तब अकबरने कहा—'नहीं, मुझे तो ये दर्शन हुए कि श्रीविट्ठलनाथजी पलनेमें झूल रहे थे और श्रीठाकुरजी झुला रहे थे।' यही अलौकिक करुणाका फल था जो एक अन्यधर्मीको भी ऐसे भावपूर्ण अलौकिक दर्शन हुए।

इस प्रकार १६वीं शतीमें श्रीविट्ठलनाथजीका प्रभाव बहुत फैला हुआ था। तभी पुष्टिमन्दिरोंमें भारतकी संगीत, चित्र, शिल्प, पाक आदि लोकानुरञ्जनकारिणी कलाओंको प्रश्रय दिया गया।

वह समय पुष्टिमार्गका एक सुवर्णयुग था; क्योंकि श्रीमत्प्रभुचरणोंमें विद्वन्मण्डन, शृङ्गाररसमण्डन, भक्तिहंस, भक्ति-हेतुनिर्णय, विज्ञप्ति आदि महान् ग्रन्थोंका निर्माण इसी युगमें किया था।

अधिकारके मदमें आकर कृष्णदासजीने जब आपकी श्रीनाथजीकी सेवामें प्रतिबन्ध लगा दिया, तब चन्द्रसरोवर-जैसे एकान्त स्थानपर छः मासतक आपने विप्रयोगावस्थामें समय व्यतीत किया। तदनन्तर मथुरामें जब इस बातके लिये कृष्णदासको कैद कर लिया गया, तब आपने यह आज्ञा की कि 'जबतक कृष्णदास छूटकर नहीं आयेंगे, तबतक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।' अपराधी जीवके अपराधोंको नहीं गिनते हुए उसपर सदैव अनुग्रह करना यही पुष्टिप्रभु एवं आचार्योंका अभयदान है। जब कृष्णदास छूटकर गोपालपुर आये, तब अपने कृत्योंपर पश्चात्ताप करते हुए आपके चरणोंमें गिरकर अश्रुपातसहित उन्होंने यह पद गाया—

परम कृपालु श्रीबल्लभनंदन
करत कृपा निज हाथ दे माथैं।
जे जन सरन आय अनुसरहीं
गहि सौंपत श्रीगोवर्धननाथैं॥
परम उदार चतुर चिंतामनि
राखत भवधारा बहि जातैं।
भज 'कृष्णदास' काज सब सरहिं
जो जाने सो श्रीविट्ठल नाथैं॥

परमोदार कृपानिधि श्रीप्रभुचरणोंके जीवनमें ऐसे कई महत्त्वपूर्ण उदाहरण उपलब्ध होते हैं। आपने मुसल्मान जीव रसखान, अलीखान, ताज आदि अनेक जीवोंको शरण लेकर इतिहासमें यह स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित कर दिया कि बल्लभसम्प्रदायकी दृष्टि संकुचित नहीं है। किसी भी जातिमें जन्मा हुआ दैवी जीव दृढ़ भक्ति एवं सच्चे हृदयकी साधनाके द्वारा चरम लक्ष्यपर पहुँच सकता है। एवं भगवद्भक्तिके द्वारा अपने जीवनको सर्वोच्च पथपर ले जाकर अपने केन्द्रबिन्दुरूप भगवत्प्राप्तिके मार्गका अधिकारी बन सकता है।

श्रीप्रभुचरणोंके चतुर्थ कुमार श्रीगोकुलेशजीने भी विधर्मी आन्दोलनोंको हटाकर पुष्टिमार्गकी प्रणालीकी अविचल रक्षा की। यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है। अतः इन सप्रमाण उदाहरणोंसे सिद्ध होता है कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीने दक्षिणमें प्रकट होकर भी अपने सिद्धान्तोंका प्रचार एवं अपने आराध्य श्रीगोवर्धनधर श्रीनाथजीका सेवा-प्रकार व्रजभूमिमें ही प्रारम्भ किया। इसीलिये व्रजमण्डलको अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने ११ वर्ष और ५२ दिवस सारस्वत कल्पमें रासादि सभी लीलाएँ यहीं की हैं। इसी दृष्टिबिंदुको लेकर भगवान् वैश्वानरावतार श्रीमहाप्रभुने अपने आराध्य लक्ष्यकी चिरंतन आराधनाके लिये अपने मार्ग-प्रचारके लिये नन्दनन्दनकी दिव्य लीलास्थली, श्रीयमुनाजीसे परम पुनीत व्रजप्रदेशको ही चुना।

अन्तमें हम प्रभुसे यही प्रार्थना करते हैं कि हमें व्रजका वास्तविक स्वरूप हृद्गत कराकर अपने श्रीचरणोंमें दृढ़ विश्वास प्रदान करें।

मैं एकमात्र प्रभुका ही सेवक हूँ। एकमात्र प्रभु ही मेरे स्वामी हैं

किया कृपा कर प्रभुने मुझको अपना चिर सेवक स्वीकार।
रहा न प्राणि-पदार्थ किसीका मुझपर अब कुछ भी अधिकार॥
मेरा भी उठ गया सहज अधिकार सभी परसे अनिवार।
एकमात्र मैं सेवक प्रभुका, केवल प्रभु मेरे भर्तार॥

मधुर

प्रेम अनिर्वचनीय होता है तथा होता है सूक्ष्मतर एवं अनुभवरूप। प्रेम देना जानता है, लेना नहीं। भगवान् श्यामसुन्दरके लिये सर्वत्याग करके, प्रियतम श्यामसुन्दरको अपना सर्वस्व समर्पण करके, एक गोपी अपने तन-मन-वचनसे, अपने जीवनके कण-कणसे, क्षण-क्षण अनवरतरूपसे श्यामसुन्दरकी प्रेममयी पूजार्चना करती रहती है। किसीको पता नहीं, अन्तर्यामी स्वरूपसे काम न लें तो परम प्रियतम श्यामसुन्दरको भी पता नहीं कि वह कौन है। उसकी सर्वसमर्पणमयी अर्चनासे श्यामसुन्दरको सहज सुख मिलता है, पर वह इतनी रहस्यमयी अर्चना होती है कि विविध पूजा-सुखकी मधुर अनुभूति प्राप्त होनेपर भी पूजा करनेवालीका उन्हें पता नहीं है। एक अन्तरङ्ग प्रेमराज्यकी प्यारी सखीके बहुत आग्रह करनेपर वह गोपी अपनी सर्वस्वार्पणमयी परम विशुद्ध सेवाका किञ्चित् स्वरूप बतलाती है। वह कहती है—

'सखी! (मेरे) मनकी बात केवल मन ही जानता है। वह अत्यन्त गोपनीय है, कहने योग्य नहीं है। (बात यह है कि—) एकमात्र प्रियतमसे ही मेरा नित्यका मधुर संयोग हो गया है। अग-जगकी सारी ममताएँ मिट गयी हैं, मायाके सारे बन्धन खुल गये हैं, अब कहीं, कभी, कुछ भी 'मेरा' नहीं रह गया है। एक प्रियतमसे ही (सारी ममताका) सम्बन्ध रह गया है। उनके सिवा अब जगत्में कोई भी प्राणी-पदार्थ 'मेरा' अपना-पराया नहीं रहा है। वे (परम प्रियतम) ही मेरे परम स्वार्थ हैं और वे ही मेरे समस्त पुरुषार्थ हैं।'

मन की बात मन हि भर जानैं,
गोपन अति नहिं कहिबे जोग।
एक मात्र प्रियतम सौं मेरौ
भयौ, मधुर नित कौ संजोग॥

मिटी सकल ममता अग-जग की
खुले सकल माया के बंध।
रह्यौ न कितहुँ, कबहुँ, कछु अपनौ
रह्यौ एक प्रिय कौ संबंध॥

निज-पर कोउ न रह्यौ अब जग मैं
तिन बिनु मेरो प्रानि-पदार्थ।
वे ही परम स्वार्थ हैं मेरे,
वे ही मेरे सब पुरुषार्थ॥

(मेरा) मन उनका है, बुद्धि उनकी है, उनकी प्रीतिमें ही सारा ज्ञान भुला गया है। (मेरे) ये प्राण दिन-रात छिप-छिपकर उन्हींकी पवित्र पूजा करते रहते हैं। पल-पलमें नयी-नयी पूजा-पद्धति (प्रकट होती है), पल-पलमें नये-नये रसका आस्वादन होता है, और पल-पलमें बिना मर्यादाके सहज ही नये-नये सुख-का, (नयी-नयी) सुखकी रुचिका और (नयी-नयी) सुखकी प्रीतिका संवर्धन होता है।

मन तिन कौ, मति तिन की, रति मैं
तिन की ही बिसर्‌यो सब ग्यान।
निसि दिन करत रहत छिप-छिप, सुचि,
तिन की ही पूजा ये प्रान॥

पल-पल नव-नव पूजन-पद्धति,
पल-पल नव-नव रस-आस्वाद।
पल-पल बढ़त सहज सुख, सुख-रुचि,
सुख-रति नव-नव बिनु मरजाद॥

(परंतु मेरे) प्रियतमको अबतक यह पता नहीं लग पाया है कि यह मूक पुजारिन कौन है, जो समर्पित जीवन है, निरन्तर छिपी रहती है और नित्य मौन रहकर पूजामें लगी है। सखी! मैं (भी) पगली हो गयी जो नित्य निरन्तर एकमात्र इसी प्रकारकी अभिलाषा करती हूँ। (अभिलाषा क्या है—) मेरे प्रियतम मुझे कभी विवेकसहित पूजा करती हुई देख न पायें। वे प्रियतम मेरे लिये सदा यही समझे

रहें कि यह श्रद्धा-प्रीति तथा पूजासे रहित है और वे सदा मुझे अत्यन्त दीन मलिन मानकर मुझपर करुणा (दया) करते रहें (प्रेम-सुख न दें) । मुझको पूजाका बस, एक यही फल अनिवार्य रूपसे मिलता रहे, मेरी यह पूजा नित्य बढ़ती रहे और (इस पूजामें ही) क्षण-क्षणमें मेरी अत्यन्त प्रीति अपाररूपसे बढ़ती रहे ।

प्रियतम अजहुँ जानि नहिं पाये,
हैं यह मूक पुजारिन कौन।
अर्चन-रत नित, अर्पित जीवन
छिपी निरंतर रहती मौन ॥
सखि ! मैं भई बावरी या बिधि
करौं नित्य अभिलाषा एक।
प्रियतम देख न पावैं कबहूँ
मो कूँ पूजा-रत सबिबेक ॥
समुझैं सदा मोय बे प्यारे
श्रद्धा-प्रीति-अर्चना-हीन ।
करत रहैं बे करुना मो पर
जानि मोय अति दीन मलीन ॥
पूजा कौ फल मो कूँ बस, यह
मिलतौ रहै एक अनिवार।
बढ़त रहै अर्चा नित मेरी
छिन छिन रति अति बढ़ै अपार ॥

इतनेपर भी प्राणप्रियतम मेरी पूजाकी कुछ भी बात न जान पायें । उनके लिये मेरी यह प्रियतम-पूजा सदा ही अज्ञात रहे । सखि ! वे मेरे प्रियतम पवित्र रसपूर्ण हृदय हैं, परम उदार हैं, वे जान जायँगे तो अपना स्नेह-सुधा-रस-सार मुझे दिये बिना मानेंगे नहीं और इससे (उनसे स्नेह-सुधा-रसका सुख पानेसे) यदि कहीं मेरे मनमें प्रियतमसे सुख प्राप्त करनेकी चाह जाग उठेगी तो फिर मेरी इस प्रकारकी न तो (विशुद्ध) पूजा-प्रीति रह जायगी, न यह (विशुद्ध) उत्साह ही रहेगा । इसीलिये मैं चाहती हूँ प्रियतमसे मुझे सुख न मिले, जिससे मेरे मनमें सुखकी कामनाका उदय ही न हो । इसीलिये मैं पूजाको सदा छिपाती रहती हूँ और छिप-छिपकर (अपने प्रियतमकी) सुन्दर छबि निरखा करती हूँ । मेरी यह पूजा प्रियतमके सुखके लिये अनन्त कालतक निरन्तर चलती रहे । इससे प्रियतमको नित्य नया-नया सुख मिलता रहे और उस नवीनताका कभी अन्त आवे ही नहीं ।

जान न पावैं तदपि प्रानप्रिय
मेरी पूजा की कछु बात।
रहै सदा ही तिन कौं मेरी
यह प्रियतम-पूजा अज्ञात ॥
जानि जायँगे जो सखि ! प्रियतम
सरस हृदय सुचि परम उदार।
मानैंगे न दिये बिनु मो कूँ
अपनौ नेह-सुधा-रस सार ॥
या तैं जौ जगि उठै कबहुँ, मो
मन प्रिय-सुख मिलिबे की चाह।
या बिधि पूजा रति न रहैगी
नहीं रहैगो यह उत्साह ॥
सुख न मिलै प्रियतम तैं मो कूँ
जा तैं जगै न मन सुख-काम।
पूजा सदा छिपाऊँ या तैं
छिप-छिप छबि निरखूँ अभिराम ॥
चलै सदा यह पूजा मेरी,
प्रियतम सुख-हित काल अनंत।
मिलै सदा प्रिय कौं सुख नव-नव
नवता कौ नहिं आवै अंत ॥

इसपर क्या टीका की जाय । हृदयमें ही अनुभव कीजिये ।

गोवर्धन-पूजनका रहस्य

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य)

अहंकार जीवमें जैसे-जैसे जड़ जमाता जाता है वैसे-वैसे उसे पतनकी गहराईकी ओर घसीटता जाता है और वञ्चित जीवको उसका पतातक नहीं होता। देवताओंके राजा इन्द्र भी इस अहंकारके चपेटेमें आ गये थे। परिणाम यह हुआ कि वे परब्रह्म परमात्माको मरणधर्मा 'मनुष्य', उनके चिन्मय तत्त्वोंको 'जड' और लीला-सहचरोंको 'जंगली' मान बैठे थे[1]। इस तरह देवराजमें असुरताके बीज अहंकारका स्तर अत्यन्त उग्र होता गया।

दयावश भगवान् श्रीकृष्णने एक ओर तो इन्द्रके इस रोगकी चिकित्सा करनी चाही। दूसरी ओर, गोवर्धनगिरिकी 'चिन्मयता' भी व्यक्त कर देनेकी उनकी इच्छा हुई। अतः नन्दबाबासे कहकर उन्होंने 'इन्द्रयाग' पर रोक लगा दी और उन्हीं समस्त पूजन-सम्भारोंसे गोवर्धनकी पूजा करायी। भगवान्‌की यह योजना शङ्करजीको बहुत अच्छी लगी। वे दल-बल-सहित इस गिरिपूजनमें सम्मिलित हुए—

धत्तूरभङ्गाविषपानविह्वलो
हिमाद्रिपुत्रीसहितो गणावृतः।
आरुह्य नन्दीश्वरमादिवाहनं
समाययौ श्रीगिरिराजमण्डलम्॥

(गर्गसंहिता, गिरि० खं० २। १४)

गोवर्धनपूजाका यह औचित्य राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों और सिद्धोंसे भी छिपा न था। वे भी बड़ी प्रसन्नतासे इस समारोहमें उपस्थित हुए। देवगिरि सुमेरु और नगाधिराज हिमालयके लिये भी गोवर्धनगिरिकी चिन्मयता व्यक्त ही थी। इसलिये उनमें जातिगत ईर्ष्या या द्वेष नहीं जगा और वे भी बड़ी प्रसन्नतासे गोवर्धनके पूजन-समारोहमें उपस्थित हुए।

पूजनके समय स्वयं भगवान्‌ने एक विशाल रूप धारण कर अपनेको 'गोवर्धन' घोषित किया और इस तरह उन्होंने गोवर्धनगिरिसे अपनी 'अभिन्नता' प्रकट की। देवता और मनुष्य भी इससे कम प्रसन्न नहीं हुए। इन्होंने फूलों और खीलोंकी मुक्तहस्त वर्षा प्रारम्भ कर दी[2]। किंतु देवराजके अहंकारका पर्दा इतना घना हो चुका था कि वे गिरिराजकी भगवद्रूपता तनिक भी आँक न पाये, प्रत्युत ईर्ष्या और क्रोधसे जल उठे। प्रलयकारी मेघोंको आज्ञा दे बैठे कि वे व्रजको ध्वंस कर दें। स्वयं भी ऐरावतपर चढ़ मरुद्गणोंके साथ मेघोंकी सहायतामें आ डटे। इधर, भगवान्‌ने गोवर्धन-पर्वत एक ही हाथपर उठा इन्द्रकी सम्पूर्ण प्रलयङ्करी वर्षा निरर्थक कर दी। भगवान्‌ने मनसे ही शेष और सुदर्शनको आज्ञा दी और वे दोनों तत्क्षण वहाँ आकर उपस्थित हुए। चक्रने पर्वतके ऊपर स्थित हो जलसम्पात पी लिया और नीचे कुण्डलाकार हो शेषजीने सारा जलप्रवाह रोक दिया। गड्ढेके भीतर एक बूँद भी जल न जा सका।

जलौघमागतं वीक्ष्य भगवाँस्तद्गिरेरधः।
सुदर्शनं तथा शेषं मनसाज्ञां चकार ह॥
कोटिसूर्यप्रभं चाद्रेरूर्ध्वं चक्रं सुदर्शनम्।
धारासम्पातमपिबदगस्त्य इव मैथिल॥
अधोऽधस्तं गिरिं शेषः कुण्डलीभूत आस्थितः।
रुरोध तज्जलं दीर्घं यथा वेला महोदधिम्॥

(गर्गसंहिता, गिरि० खं० ३। २०—२२)

जब इन्द्रने अपनी सारी शक्ति लगाकर देख लिया कि मनकी बात नहीं हुई, तब उनका अहंकार जाता रहा और तब उन्हें वस्तुस्थितिका ठीक-ठीक बोध हुआ। फिर तो वे अपनेको ही अपराधी पा भयभीत भी हो उठे और सीधे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर आ गिरे। अब उन्हें श्रीकृष्णके शुद्ध सत्त्वमय ज्ञानघन स्वरूपका परिज्ञान हुआ और तब वे यह भी जान सके कि किस प्रकार उनके भीतर अहंकार विध्वंसका कार्य कर रहा था। भगवान् श्रीकृष्णने इन्द्रको क्षमा कर दिया और इन्द्रने भी आकाश-गङ्गाके जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक किया। इस प्रकार गोकुलकी की गयी रक्षासे कामधेनु भी बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपनी दुग्धधारासे भगवान्‌का अभिषेक किया।

---

१ ……………… गोपानां काननौकसाम्।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम्॥
(श्रीमद्भागवत १०। २५। ३)

२. देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं
जनेषु वर्षत्सु च लाजसंघम्।
शैलोऽस्मि लोकानिति भाषयन् सन्
जघास सर्वं कृतमन्नकूटम्॥
(गर्गसंहिता, गिरि० खं० २। २०-२१)

इन अभिषेकोंको देखकर गिरिराज गोवर्धनके हर्षका ठिकाना न रहा और वह द्रवीभूत हो बह चला। तब भगवान्ने प्रसन्न होकर अपना करकमल उसपर रक्खा, जिसका चिह्न आज भी दीखता है—

तद्धस्तचिह्नमद्यापि दृश्यते तद्‌गिरौ नृप ।

(गर्गसंहिता, गिरि० खं० ४ । १२)

गोवर्धनकी चिन्मयताका स्पष्टीकरण गर्गसंहितामें हुआ है। अवतारके समय भगवान्ने राधासे साथ चलनेको कहा था। उसपर राधाजीने कहा था कि वृन्दावन, यमुना और गोवर्धनके बिना मेरा मन पृथिवीपर न लगेगा। यह सुन श्रीकृष्णने अपने हृदयकी ओर दृष्टि डाली थी, जिससे तत्क्षण एक सजल तेज निकलकर 'रासभूमि' पर जा गिरा था और वही पर्वतके रूपमें परिणत हो गया था। यह रत्नमय शृङ्गों, सुन्दर झरनों, कदम्ब आदि वृक्षों एवं कुञ्जोंसे सुशोभित था। उसमें अन्य भी नाना प्रकारकी दिव्य सामग्रियाँ उपस्थित थीं, जिन्हें देखकर राधाजी बहुत प्रसन्न हुईं।

एक और कथा है। भगवान्की प्रेरणासे शाल्मलीद्वीपमें द्रोणाचलकी पत्नीमें गोवर्धनका जन्म हुआ। भगवान्के जानुसे वृन्दावन और उनके वामस्कन्धसे यमुना प्रकट हुईं। गोवर्धनको भगवद्रूप जानकर ही सुमेरु, हिमालय आदि पर्वतोंने उसकी पूजा की और उसे गिरिराज बना उसका स्तवन भी किया।

एक समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें पुलस्त्यजी वहाँ आये। वे गिरिराज गोवर्धनको देख मुग्ध हो उठे और द्रोणके पास जाकर उन्होंने कहा—'मैं काशीनिवासी हूँ। एक याचना लेकर आपके पास आया हूँ। आप अपने इस पुत्रको मुझे दे दें। मैं इसे काशीमें स्थापितकर वहीं तप करूँगा।' इसपर द्रोण पुत्रके स्नेहसे कातर तो हो उठे। पर वे ऋषिकी माँग ठुकरा न सके। तब गोवर्धनने मुनिसे कहा—'मैं दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा हूँ। आप मुझे कैसे ले चल सकेंगे।' मुनिने कहा—'मैं तुम्हें हाथपर उठाये चला चलूँगा।'

उपविश्य करे मे त्वं गच्छ पुत्र यथासुखम् ।
वाहयामि करे त्वां वै यावत् काशीसमागमः ॥

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखं० २ । ३१)

गोवर्धनने कहा—'महाराज ! एक शर्त है। यदि आप मार्गमें मुझे कहीं रख देंगे तो मैं उठ नहीं सकूँगा।' मुनिने यह शर्त स्वीकार कर ली। बाद, पुलस्त्य मुनिने हाथपर गोवर्धन उठाकर काशीके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें व्रजभूमि मिली, जिसपर गोवर्धनकी पूर्वस्मृतियाँ जाग उठीं। वह सोचने लगा कि भगवान् श्रीकृष्ण राधाके साथ यहीं अवतीर्ण हो बाल्य और कैशोर आदिकी बहुत-सी मधुर लीलाएँ करेंगे ! उस अनुपम रसके बिना मैं रह न सकूँगा। ऐसे विचार उत्पन्न होते ही वह भारी होने लगा, जिससे मुनि थक गये। इधर, लघुशंकाकी भी प्रवृत्ति हुई। पश्चात् स्नान आदिसे निवृत्त होकर जब वे गोवर्धनको पुनः उठाने लगे, तब वह न उठा। गोवर्धनने मुनिको अपनी शर्तकी याद दिलायी और कहा—'अब मैं यहाँसे डिगनेका नहीं।' इसपर मुनिको क्रोध हो आया और वे उसे शाप दे बैठे—'तुमने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया, इसलिये तुम प्रतिदिन तिल-तिल घटते जाओगे।' उसी शापसे गिरिराज गोवर्धन आज भी तिल-तिल घटता ही जा रहा है—

नित्यं संक्षीयते नन्द तिलमात्रं दिने दिने ॥

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखं० २ । ४९)

इतना होनेपर भी, जबतक गङ्गा और गोवर्धन पृथिवीपर हैं, तबतक पृथिवीमें कलिका प्रभाव पूर्णरूपसे न जम सकेगा। इस तरह गिरिराजकी 'चिन्मयता' सुस्पष्ट हो जानेसे उसकी महत्ता स्वयं व्यक्त हो जाती है।

एक कथा है कि एक ब्राह्मण अपना ऋण वसूल करने मथुरा आया। लौटते समय उसने गिरिराजका एक गोल पत्थर भी साथ ले लिया। मार्गमें एक भयानक राक्षसने उसे घेरा। इसपर वह ब्राह्मण काँप उठा। वह इतना अधिक घबरा गया कि उसका हिलना-डोलना भी कठिन हो गया और वह रो पड़ा। राक्षस मुँह बाये सामने खड़ा था। ब्राह्मणने अपनी हत प्रभतामें गोवर्धनका वह पाषाणखण्ड ही उसपर दे मारा। गोवर्धनके इस पाषाणखण्डकी 'चिन्मयता'का ही यह अद्भुत प्रभाव था कि उसके स्पर्शमात्रसे राक्षसको नीच योनिसे छुटकारा मिल गया और उसकी काया दिव्य हो गयी। साथ ही, नभोमार्गसे तत्क्षण एक दिव्य विमान उतरा, जिसपर चढ़कर वह राक्षस 'गोलोक' चला गया। अतः गन्धमादनकी यात्रा अथवा अन्य नाना प्रकारके पुण्यों एवं तपस्याओंका जो फल प्राप्त होता है, उससे भी कोटिगुण अधिक फल गोवर्धनके दर्शनमात्रसे होना शास्त्रोंमें लिखा है।*

* यह लेख काशीस्थ गोयनका संस्कृत महाविद्यालयके पुराण-विभागाध्यक्ष पण्डित श्रीराममूर्तिजी शास्त्री (पौराणिक) द्वारा लिखित श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक) के आधारपर लिखा गया है। श्रीपौराणिकजीकी लिखित श्रीमद्भागवत-कथा पुस्तक सभीके लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह पौराणिक-कार्यालय, डी० १। ६५, ललिताघाट, वाराणसीमें मिलती है। मूल्य दस रुपये हैं—सम्पादक

नाद-ब्रह्म और उसका स्वरूप

(लेखक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी गर्ग)

चेतन जगत्के समस्त जीवोंमें विचार प्रधान है जिसके द्वारा चेतन (प्राणी) में चेतना उद्भूत होती है । विचार एक ऐसी सत्ता है जो समस्त क्रियाकलापोंका कारण है । विचारके बिना न तो परमाणुमें कोई हलचल हो सकती है और न मनुष्यमें कोई क्रिया । विचार करनेकी शक्ति और उसकी सीमा प्रत्येक जीवमें भिन्न-भिन्न है । एक छोटा शिशु चन्द्रमाको देखकर उसकी ओर हाथ बढ़ा सकता है, उसे खिलौना समझकर; किंतु राकेटद्वारा चन्द्रमामें पहुँचनेका विचार वह नहीं कर सकता । इसीलिये शिशुके विचारकी एक सीमा है जो विस्तृत नहीं है ।

विचार करनेका माध्यम स्थूलरूपमें वाक्य हैं । भिन्न-भिन्न वाक्य मिलकर किसी भी वस्तुको रूप प्रदान करते हैं और तब उस रूपकी तदाकारताद्वारा वृत्ति विषयको प्राप्त होती है, जिसका रस जीवको प्राप्त होता है । वाक्योंका आधार शब्द हैं, जिनका चयन वाक्यके ढाँचेका निर्माण करता है । शब्दोंके स्वतन्त्र अर्थोंका संनिवेश वाक्यके विस्तृत अर्थको जन्म देता है । शब्दका आधार वर्ण है । भिन्न-भिन्न वर्ण अपने अर्थको आत्मसात् करते हुए शब्दरूपी अर्थका निर्माण करते हैं, वर्णका माध्यम ध्वन्यात्मक नाद है, ध्वन्यात्मक नाद सगुण है जिसका कारण निर्गुण नाद है ।

सुषुप्तिको छोड़कर जाग्रत् तथा स्वप्नकी अवस्थाओंमें प्रतिक्षण ज्ञानेन्द्रियाँ कार्यरत रहती हैं । बुद्धिके आश्रयसे मन ज्ञानेन्द्रियोंका संचालन करता है । बुद्धि स्वयंमें केवल एक यन्त्र है । यन्त्रके अतिरिक्त उसका और कोई अस्तित्व नहीं है । मनके ऊपर प्रत्येक वस्तुका एक प्रभाव पड़ता है, किंतु उस प्रभावका अर्थ उसे ज्ञात नहीं हो सकता अतएव उस प्रभावके प्रतिबिम्बको वह बुद्धिकी ओर प्रसारित करता है, तब कहीं जाकर बुद्धि अपने निर्णयसे मनको वस्तुके मर्मका बोध कराती है । तदनन्तर मन वस्तुके भोग अथवा अभोगके हेतु ज्ञानेन्द्रियोंको निर्देश करता है । इस प्रक्रियाको उदाहरणरूपमें हम इस प्रकार समझ सकते हैं······रात्रिके समय कहीं दूर एक प्रकाश-बिन्दु चमकता दृष्टिगोचर होता है, जिसका प्रभाव आँखके माध्यमसे मनतक पहुँचता है । मन उसका विश्लेषण करनेमें असमर्थ होनेके कारण बुद्धिका आश्रय लेता है । बुद्धि अपनी वृत्तियोंद्वारा उसको समझनेका प्रयत्न करती है । जबतक बुद्धिकी निश्चयात्मक वृत्ति नहीं होती तबतक वस्तुके प्रति संशयात्मक वृत्ति जागरूक रहती है । इसीलिये कभी वह प्रकाश हमें किसी झोंपड़ीमें जलते चिरागका प्रतीत होता है, कभी किसी बटोहीके हाथमें स्थित लालटेनका और कभी किसी गाड़ीके अग्रभागमें लगी रोशनीका । जब वस्तु हमारे निकट आ जाती है तब आँखद्वारा स्पष्ट देखनेपर पूर्वज्ञानके आधारपर प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा बुद्धि अपनी निश्चयात्मक वृत्तिको स्थिर कर देती है और मन उस वस्तुका भोग करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विचारकी प्रक्रिया सूक्ष्मरूपसे बुद्धिके द्वारा ही सम्पन्न होती है जिसका आधार नाद है । मन जब किसी वस्तुके प्रभावका प्रतिबिम्ब बुद्धिको प्रेषित करता है, तब उसमें भी एक अति संक्षिप्त विचारकी क्रिया सम्पादित होती है । यदि वह क्रिया सम्पादित न हो तो मन बुद्धितक कोई बात पहुँचा ही नहीं सकता, निष्क्रिय होकर रह जायगा । इसलिये मनके सीमित विचारका कारण भी नाद है । किंतु मन और बुद्धिके मूलमें जो दो नाद दृष्टिगोचर होते हैं, वे भिन्न-भिन्न नहीं; वस्तुतः वह एक ही नाद है । मन और बुद्धि अपनी शक्ति और सीमाओंके अनुसार एक ही नादसे विचारशक्ति ग्रहण करते हैं, जैसे एक मोटरके टायर और एक साइकिलके टायरमें वायु भरी जाय तो दोनोंकी वायु टायरकी सीमा और शक्तिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रतीत होगी, किंतु यथार्थमें यह एक ही वायुका परिणाम है । इस प्रकार यह बात आसानीसे समझमें आ जाती है कि प्राणीमात्रके विचार करनेका एकमात्र साधन केवल नाद है जो अखण्डरूपसे समस्त सृष्टिमें विद्यमान है ।

अब हम नादकी शक्तिपर विचार करेंगे । पञ्चभूतोंमें आकाश सबसे सूक्ष्म है । आकाशका गुण नाद है । विचारका मूल होनेके कारण संसार नादका परिणाम है । यदि विचारका अस्तित्व न हो तो संसारके किसी भी प्राणीमें कोई हलचल नहीं हो सकती, सब कुछ जड-जैसा हो जायगा । जड पदार्थोंमें भी अति सूक्ष्मरूपसे क्रिया होती रहती है, परंतु उस

क्रियाको करनेवाले परमाणु भी विचार किया करते हैं। अतः नादका अस्तित्व न होनेपर जडका अस्तित्व भी नहीं रहेगा; पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश निश्चेष्ट हो जायँगे, इसीलिये ब्रह्माण्डीय ग्रहोंका आकर्षण-विकर्षण समाप्त हो जायगा और सब अपने कारण-शरीरमें समा जायँगे। उस कारण-शरीरमें नादका प्रभाव न होगा तो वह केवलमात्र अचेतन सत्ता कहलायेगी और यदि नादका प्रभाव उसमें हुआ तो उसे चेतनकी संज्ञा दी जायगी। नादकी इसी सत्ताके कारण आत्माको चेतन माना जाता है, बल्कि निष्क्रिय और सक्रिय दोनों ही विशेषणोंको उसके लिये प्रयुक्त किया जाता है। आत्मा निष्क्रिय है और उसके अन्तरका नाद सक्रिय। यह नाद ही वह अविद्या अथवा माया है जो अपने प्रभावसे आत्मामें जीवकी प्रतीतिका भ्रम उत्पन्न करता है। वस्तुतः नाद और जीव अथवा माया और जीव एक ही है। जिसने तपके द्वारा इस नादतत्त्वका मूल अथवा सार प्राप्त कर लिया है वह संसारमें रहते हुए भी मुक्त है।

मतंगने कहा है—

नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः।
नादरूपा पराशक्तिर्नादरूपो महेश्वरः॥

नादके दो प्रकार हैं—पहला आहत और दूसरा अनाहत। जो नाद हमें कानोंसे सुनायी पड़ता है उसे 'आहत' कहते हैं और जो कानोंसे सुनायी नहीं पड़ता उसे 'अनाहत' कहते हैं। ऐसा प्रचारमें है। यह अनाहत नाद ही समस्त आहत नादका कारण है। आहत नादमें मनको एकाग्र करने तथा जीवको आनन्द प्रदान करनेकी अपूर्व क्षमता है। किसी-किसी नादसे पशुओंके मन्त्रमुग्ध होनेकी कथाएँ भी हम सुनते हैं। अतः अलौकिक शक्तिवाला यह आहत नाद लोकरञ्जक है, अनाहत नाद कानोंसे सुनायी नहीं पड़ता, अतः वह लोकरञ्जक नहीं। किंतु उसकी मधुरता और आनन्द प्रदान करनेकी शक्तिके विषयमें साधकोंने जो उक्तियाँ कही हैं वे आश्चर्यजनक हैं। उनका कहना है कि अनाहत नाद कानोंसे नहीं सुना जा सकता, वह केवल अनुभव होता है, किंतु आहतकी अपेक्षा आनन्द देनेकी शक्ति उसमें हजारों गुनी है। वह लोकके लिये रक्तिदायक नहीं, किंतु मुक्तिदायक है। नानक, कबीर, मीराँ, सूर तथा अनेक शब्दसाधकोंने उसी मुक्तिदायक नादका आश्रय लिया है। कबीरने कहा है—

भौंर गुफा पाँचों कर याना, बाजे ताल मृदंग बँधाना।
जब पाँचों दसके घर जाई, तब दस पाँचहि आन समाई॥
जब दस पाँच गुफा मँह आवहि, मधुरी तान अरध धुनि गावहि।
कोइ घंटा कोइ ताल बजावहि, कोइ सँखनाद कोइ झालरि लावहि॥

कोइ किंकिनि चिंचिनि किन्नरि बीना,
कोइ भेरि मृदंग औ ढोल सहीना।
कोइ तारी कोइ बैन बजावहिं,
रहसि रहसि नाना गुन गावहिं॥
सारँग जल तरंग धुनि धारी,
तबला चहुँ ओर नरसिंहा डफारी।
इहि बिधि भौंर गुफा धुनि गाजै,
नाना रंग मधुर धुनि बाजै॥

इसी प्रकार मीराँ, नानक आदिके भी अनाहतके प्रति एक ही अनुभव हैं जो साधनाके द्वारा प्रकाशित होकर आहत नादकी अपेक्षा कहीं अधिक चमत्कारी सिद्ध होते हैं।

सतगुरु सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में॥

× × ×

भक्त सतगुरु पुरुष सोई, जिस हर प्रभु भाना भावये।
आनन्द अनहद बजें बाजे, हर आप गल मेलावये॥

—श्रीगुरु ग्रन्थ साहब

× × ×

अनहद शब्द उपज्यो मों घट में ताको ध्यान करु अष्ट जाम।
सरज रिषभ गांधार मध्यम पंचम धैवत निषाद पावै ज्यों अति अभिराम॥

—तानसेन

पाश्चात्त्य साधकोंमें कीट्सके वाक्य भी विचारणीय हैं जिनमें एक स्थानपर उसने कहा है—

'Heard melodies are sweet but those unheard are sweetest.'

अर्थात् जो धुनें सुनायी पड़ती हैं वे मधुर हैं, किंतु जो सुनायी नहीं पड़तीं वे मधुरतम हैं।

कवि जब काव्य-सृजनके लिये एकाग्र होता है, तब नये-नये भाव शब्दरूपी वाहनोंपर छन्दरूपी रथमें सजकर स्वयमेव आते हैं, किंतु कहाँसे, इसे कवि नहीं जानता। यथार्थमें उसे जो निधि प्राप्त होती है वह अनाहत नादका ही परिणाम है। भौतिक ज्ञान सम्पन्न करनेके लिये एकाग्र होना आवश्यक है जो आहत नादके माध्यमसे शीघ्र हो सकता है, इसीलिये

कलाकारकी स्थिति साधारण लोगोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट मानी जाती है। किंतु परम ज्ञानके लिये अनाहतका अनुभव कर उसके और पीछे अति सूक्ष्म नादकी अखण्ड सत्तामें जाना पड़ेगा जो ज्ञानका अक्षय भण्डार है, जहाँसे ज्ञानी ज्ञान बनकर ही लौटता है।

बुद्धिको नादसे जो शक्ति प्राप्त होती है वह सीमित है, इसीलिये उस शक्तिका विस्तार करनेके लिये विचारके द्वारा विचारके मूलतक पहुँचना आवश्यक है। विचार अर्थात् नादके द्वारा नादतक पहुँचनेकी क्रिया साधन है, जिसका मर्म शास्त्रकृपा, गुरुकृपा, ईश्वरकृपा और आत्मकृपाके बिना बोधगम्य नहीं। कवि और साहित्यकार विचार करते हैं अथवा नादमें अवगाहन करते हैं, यह एक ही बात है। चित्रकार भावनाओं अर्थात् विचारों (नाद) के माध्यमसे ही तूलिकाको मोड़ प्रदान कर रेखाओंका मनोहारी संयोजन करनेमें समर्थ होता है। इसी प्रकार नर्तक या अभिनेता अङ्ग-भङ्गिमाओंद्वारा केवल बिचार (नाद) और ताल (नाद-खण्ड) के आश्रयसे अपनी कला प्रदर्शित करनेमें समर्थ होते हैं। नादकृपासे ही इन सब विभूतियोंको लोक और अज्ञानाच्छादित परलोकका आनन्द प्राप्त होता है।

समस्त कलाओं और साधनोंका आद्यकेन्द्र या बिन्दु नाद है। यह अब अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती। किसी भी विचारके लिये प्रयोज्य शब्द भले ही साहित्यकी संज्ञा प्राप्त कर लें किंतु वह साहित्य वस्तुतः संगीत ही है, जो व्यक्ति स्फोट-सिद्धान्तका मर्म जानता है, वह शब्दके वर्णकी तरङ्गायित सत्ताके सहारे नादकी उस सीमाका स्पर्श करनेमें समर्थ हो सकता है जहाँ नादके लघु और दीर्घ स्वयंभू स्फुरण अर्थ लेकर स्वयं प्रकाशित होते हैं। इसीलिये संस्कृत भाषा अर्थ और व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे अन्य भाषाओंकी अपेक्षा पूर्णतया समृद्ध है। वास्तवमें सङ्गीत और साहित्यके प्राण, उनसे उत्पन्न भाव या अर्थमें नहीं, बल्कि अप्रत्यक्ष नादमें बसते हैं, इसीलिये किसी-किसी साहित्यको हम पढ़ना नहीं चाहते, गाना चाहते हैं।

नाद ही वेदोक्त स्वरका आधार है और वह स्वर, अक्षर तथा बीजका ओज है। स्फोटके आधारपर बीज-मन्त्र अथवा बीजाक्षर प्राणके उत्सर्पणद्वारा वृत्तिको नादके मूलतक पहुँचानेका अद्वितीय साधन हैं। प्राण अपनी स्पन्दनशक्तिके स्थित केन्द्र अखण्ड नादतक पहुँचकर स्थिर हो जाता है। यदि कोई व्यवधान न हो अर्थात् प्रारब्ध भोग शेष न हो तो जीवको तुरीयातीत अवस्था प्राप्त होती है, अन्यथा स्थितिसे पुनः गतिका जन्म होता है, अचल ही चलका कारण बनता है। नादशक्तिके स्पन्दनका कारण उसीका खण्ड (ताल) बनता है। तालकी विभिन्न गतियाँ भौतिक ज्ञान और अज्ञानका कारण बनती हैं, उसका तरङ्गायित रूप अर्थात् लय व्यवहार और पारस्परिक सम्बन्धकी सुदृढ़ भित्ति बनता है।

नादशक्तिका केन्द्रसे परिधिकी ओर और परिधिसे केन्द्रकी ओर तरङ्गित होना ही त्रयीसंस्थानको निर्मित करता है, जिसका परिणाम समस्त पिण्ड अथवा भूत भौतिक पदार्थ होते हैं, तीन लोक, तीन शरीर (स्थूल, सूक्ष्म और कारण), तीन काल (भूत, भविष्य और वर्तमान), तीन अवस्थाएँ (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति); तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश), तीन ग्राम (षडज, मध्यम और गान्धार); तीन स्वर, तीन सप्तक (मंद्र, मध्य और तार), तीन रंग, तीन वेद, तीन गुण (सत्त्व, रज और तम), तीन वर्ण, तीन लय (विलम्बित, मध्य और द्रुत) तथा त्रयीखण्ड (तिहाई, जो विशेषतया तालवाद्योंमें प्रदर्शित की जाती है और जिसके द्वारा मनुष्य प्रभावित होता है) आदि सभीको त्रयीसंस्थानके कारण ही इतना महत्त्व प्राप्त है।

नादका न आदि है न अन्त, इसीलिये वह जन्म और मृत्युसे परे है। विचार या ज्ञान (नाद) के समाप्त हो जानेपर उसके समाप्त हो जानेका जो ज्ञान शेष रहता है वह नाद (ज्ञान) के स्वतः सिद्ध होनेका साक्षी है। समस्त प्रमाणोंकी सिद्धिके लिये अन्ततोगत्वा नाद ही प्रमाण होगा जो किसी भी कर्ता, क्रिया एवं फलके अधीन नहीं। कर्ता कितना भी प्रयत्न करके उसके खण्ड नहीं कर सकता। यदि करेगा तो वह खण्ड भी नाद होगा। मान्यता कर्ताकी स्वतन्त्र कृति होती है, भिन्न-भिन्न व्यक्ति उसे शब्द, ज्ञान, स्वर, श्रुति, ध्वनि तथा वृत्ति आदि मान सकते हैं, किंतु पुरुषभेद नादभेदका कारण नहीं हो सकता; क्योंकि पुरुषविशेषद्वारा उसका निर्माण नहीं होता। नादके द्वारा ही इन सबका भेद सम्भव होता है। यदि किसी शक्तिको नादका कर्ता मानें तो नादरूप कर्मके पूर्व उसमें नादका अभाव स्वीकार करना पड़ेगा, किंतु उस अभावके अनुभव (ज्ञान) का कारण नादके अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता। यदि नादको शक्तिका गुण मानें तो न्याय-सिद्धान्तके अनुसार गुणीमें गुणकी स्थिति माननी पड़ेगी; क्योंकि गुण नष्ट हो भी जाय, तब भी अपने कारणमें उसकी स्थिति रहती है। इसलिये शक्तिको नादरूप ही मान लिया जाय तो उसमें कोई दोष द्रष्टव्य नहीं होता।

कालके द्वारा नादको परिच्छिन्न नहीं किया जा सकता। भूत और भविष्यका विचार करके कालकी धारामें नादके उदय और विलयकी कल्पना असंगत है; क्योंकि वह कल्पना स्वयं नादाधीन है। कालके खण्ड करनेपर नादके खण्ड नहीं किये जा सकते; क्योंकि माने हुए काल-खण्डोंका अनुभावी भी नाद होगा। यदि कालके खण्ड नहीं करते तो उसमें भूत-भविष्यका भेद व्यर्थ है। यथार्थमें कालभेदका विचार निर्मूल है; क्योंकि कालका अभाव भी काल होगा। अभावरहित वस्तु निरंश होती है और निरंशमें किसी प्रकारका विभाजन नहीं होता, केवल सांशमें होता है। भूत भविष्य संवित् मात्रके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संविन्मात्रद्वारा संवित्को परिच्छिन्न नहीं बनाया जा सकता। अतः नाद कालपरिच्छिन्न नहीं।

कालके समान देशका भी अभाव नहीं, जिस देशमें देशके अभावकी कल्पना की जायगी वह भी देश ही होगा, पूर्व-पश्चिमकी कल्पना वस्तुनिष्ठ नहीं, कालखण्डकी तरह संविन्मात्र है, किसी विषयकी प्रतीति देश, कालके आश्रित है और देश एवं काल विषय-भेदकी कल्पनापर आधारित हैं जो नादसत्तासे अभिन्न है, भिन्न समझनेपर उसे असत्य कहनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, किंतु उस असत्यके संवित्का आधार नाद होगा; अतएव नादमें देशपरिच्छिन्नकी कल्पना अनुचित ही है।

ज्ञानके बिना ज्ञेय और ज्ञेयके बिना ज्ञानकी सिद्धि नहीं हो सकती, दोनों एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं, किंतु नाद दोनोंकी; अतः वह स्वतः सिद्ध है। ज्ञानमें ज्ञाताका भेद औपाधिक है, नादका ज्ञान अथवा ज्ञानके लिये नाद दोनोंमें कार्य-कारण सम्बन्ध होनेसे विचारका विषय नहीं, यदि ज्ञेयरूप नादके पूर्व ज्ञान माना जाय तब भी नाद उसका प्रमाण होगा, अज्ञानके ज्ञानका साक्षी भी नाद है, यह हम पहले सिद्ध कर ही चुके हैं।

ऋत्का अर्थ है संचालन और मननका अर्थ है चिन्तन, आत्मामें ये दोनों गुण विद्यमान हैं, आत्मस्थिति अर्थात् नादवृत्तिमें लीन रहना मुमुक्षुका स्वभाव होता है, इस विषयरहित सत्यवृत्तिके लिये अन्य किसी भी उपादानकी अपेक्षा उसको नहीं होती, इसे अनुभवी पुरुष भलीभाँति जानते हैं, गुणातीत, इन्द्रियोंसे परे मन, वचन और बुद्धिसे अलग, देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न, सनातन और सार्वभौम जो नादतत्त्व है उसको केवल योगियोंने जाना है, वेदमें उसकी अपार महत्ताका गुणगान किया गया है, इहलोक और परलोकका केवल वही एक आधार है। भगवान्ने कहा है—

मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना।
भूतेषु घोषरूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते॥

(श्रीमद्भागवत ११। २१। ३७)

अर्थात् 'मैं अनन्त शक्तिसम्पन्न एवं स्वयं अनन्त ब्रह्म हूँ, मैंने ही वेदवाणीका विस्तार किया है, जैसे कमलनालमें पतला-सा सूत होता है, वैसे ही वह वेदवाणी प्राणियोंके अन्तःकरणमें अनाहत नादके रूपमें उद्घाटित होती है।'

जिस दिव्य ध्वनिमें वेदका सार निहित है वहाँतक पहुँचनेका एकमात्र साधन अनाहत नादका श्रवण (अनुभव) है। प्राचीन कालमें आर्यपुत्रोंको बाल्यकालसे ही वेद-मन्त्रोंके उच्चारणकी सत्-शिक्षा दी जाती थी, पाठ-के-पाठ कण्ठस्थ करा दिये जाते थे, भले ही वे उनका अर्थ समझें या न समझें; इस प्रणालीका रहस्य यही था कि स्वरोच्चारणद्वारा नादकी स्पन्दनशक्तिके प्रभावसे मुक्तिमार्ग सरल हो जाय। जीव अपनी अभिव्यक्तिके लिये नादके दो रूपोंका प्रयोग करता है जिसमें एक वर्णरूप कहलाता है और दूसरा स्वररूप। वर्णरूप नादकी व्याख्या न्याय, व्याकरण और पूर्व-मीमांसामें मिलती है। स्वररूप नाद संगीतशास्त्रका विषय है जिसके कुछ अंश ध्वनि-सिद्धान्तके रूपमें भारतीय साहित्यमें भी उपलब्ध होते हैं, सामसम्प्रदायके ऐसे अनेक ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं जिनमें ध्वन्यन्तरालोंके पारस्परिक सम्बन्धद्वारा स्वर अथवा श्रुतिके द्वारा भिन्न-भिन्न भाव और रसोंकी उपलब्धिपर गूढ़ विवेचन प्रस्तुत किया गया हो, इसीलिये स्वरोंकी आकृति, रंग, जाति, देवता, जन्मस्थान तथा उनकी उत्पत्ति आदिका विषय समझनेमें आजका विद्यार्थी अपनेको असमर्थ पाता है, गान्धर्ववेदमें ध्वनिकी उत्पत्ति, प्रतिध्वनिके प्रकार, स्पन्दनकी विभिन्न शक्तियाँ, स्वर और कालके संयोग, स्वर और भावका पारस्परिक सम्बन्ध, स्वर और प्रकृतिका सम्बन्ध, स्वरके रूप तथा संकेत और शब्द-तत्त्व-आकर्षणपर सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया गया था; किंतु दुर्भाग्यसे वह भारतीय निधि आज लुप्त है।

व्याकरणका स्फोट जो नित्य और स्वयंप्रकाश है वही गुप्तभेद या दिव्य नाद है। शब्दकी तरह स्फोट भी नित्यरूप होकर परब्रह्मसे अथवा सृष्टिकी सत्ताके साथ अर्थकी भाँति लगा रहता है और यही उस प्रकाशका निरूपक होता है, जिससे सत्ताका ज्ञान प्राप्त होता है, किंतु उसके द्वारा सत्ता-

का ज्ञान होनेके पूर्व इसे स्पष्ट ध्वनिसे प्रकट किया जाता है, नादानुसंधान उस ज्ञानतक पहुँचनेकी एक अद्वितीय चेष्टा है—

'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः
स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'

अर्थात् एक ही शब्दके पूर्ण ज्ञान और सम्यक् प्रयोग-से ऐहिलौकिक और पारलौकिक दोनों फलोंकी प्राप्ति होती है, यही वैदिक ज्ञानका रहस्य है । योगशिखोपनिषद्में कहा गया है—

नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः ।
नानुसंधेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम् ॥

अर्थात् नादसे बड़ा कोई मन्त्र नहीं है, अपने आत्मासे बड़ा कोई देव नहीं है, नादानुसंधानसे बड़ी कोई पूजा नहीं है और तृप्तिसे बड़ा कोई सुख नहीं है । समस्त योगदर्शनमें नादको ही महत्त्व दिया गया है, कुण्डलिनीको जाग्रत् करनेके लिये योगीजन नादका ही आश्रय लिया करते हैं । स्थूलरूपसे संगीत-कलामें तरानेको इसीलिये महत्त्व प्राप्त है कि उसके ओंकार आदिक शब्द स्वरके सम्मेलनसे प्राणको सिद्ध कर कुण्डलिनी शक्तिके ऊर्ध्वगामी होनेका कारण बनते हैं ।

शब्दभेदसे नाद आठ रूपोंमें व्यक्त होता है, यथा—घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झंकार और ध्वंकृत । नवाँ महानाद इन सबमें व्याप्त रहता है । क्षेमराजने अपनी टीकामें इन आठ रूपोंकी व्याख्या करते हुए कहा है—

'कानमें अंगुली डालनेसे जलती हुई आगके शब्दके सदृश जो शब्द सुनायी देता है, उसे 'घोष' कहते हैं । उस घोषके अन्तमें फूटे काँसेके शब्दके सदृश जो रूखा शब्द सुनायी देता है, उसे 'राव' कहते हैं । बाँसकी ध्वनिके अनुरूप जो नाद होता है, वह'स्वन' कहलाता है, जो समस्त शब्दों-का आधारस्वरूप है, उसे 'शब्द' कहते हैं । जिसके द्वारा वाक्य, पद और वर्ण भिन्न-भिन्न रूपमें स्फुरित होकर प्रतीत होते हैं, उसे 'स्फोट' कहते हैं । वीणामें पञ्चमके तारको छेड़नेपर जो सुखप्रद नाद उत्पन्न होता है, उसीके सदृश 'ध्वनि' होती है । वीणाके समस्त तारोंके एक साथ झंकृत होनेपर जो नाद प्रकाशित होता है, उसीके सदृश 'झंकार' होती है । 'ध्वंकृत' घण्टेके नादके समान होता है ।'

उपर्युक्त सभी नाद सार्थक हैं । इसे आजका विज्ञान सिद्ध करता जा रहा है । अधिक-से-अधिक २५ हजार प्रति सेकंड-की कम्पन-संख्यावाले नादको कानोंसे सुना जा सकता है; किंतु सत्तर हजार प्रति सेकंडकी कम्पन-संख्यावाले नादको मनुष्यके कान नहीं सुन सकते । पशुओंमें विशेषकर श्वानमें इतनी कम्पन-संख्यावाले नादको सुननेकी अलौकिक शक्ति होती है । पाश्चात्त्य वैज्ञानिक इस नादद्वारा लोहे-जैसी कड़ी धातुको काटने तथा विभिन्न रसायनोंके सहज सम्मिश्रणके लिये अपने प्रयोग कर रहे हैं, जो नाद-विज्ञानके रूपमें शीघ्र ही हमारे सामने उपस्थित होंगे ।

नादके स्पन्दनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ ही वर्णों और स्वरके रूपमें जीव-ब्रह्मकी अभिव्यक्तिके निमित्त कारण बनी हैं । गान्धर्व-वेदका लक्ष्य इस गूढ़ रहस्यका उद्घाटन है । प्रणवकी उपासना और आहत नादकी साधना दोनों उसी मूल तत्त्वके साक्षात्कार-का प्रयत्न हैं, स्थितप्रज्ञकी स्थितिमें महर्षियोंने उसके अनाहत रूपका आस्वादन किया है । अनाहतकी असम्प्रज्ञात स्थितिमें पहुँचनेके लिये सम्प्रज्ञात आहत भी एकमात्र सहज तथा लोक-रंजक अवलम्ब है, इसीलिये जगत्में गान-वादनकी महत्ता अन्य कलाओंकी अपेक्षा अधिक है । चित्तवृत्तियोंको समाविष्ट कर संगीतके द्वारा जो मनुष्य भाव-समाधि प्राप्त करेगा, उसके समक्ष नादका स्वरूप निःसंदेह प्रकट होगा और उसे परब्रह्मकी प्राप्ति होगी । इसीलिये याज्ञवल्क्यस्मृतिमें कहा गया है—

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति ॥

अर्थात् जो वीणा-वादनका तत्त्व और श्रुतियोंकी जाति तथा ताल जानते हैं वे बिना प्रयासके ही मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

मैं भी शुभ बन गया

ईश्वरकी शुभ दृष्टिका मुझमें हुआ पसार ।
मैं भी अब शुभ बन गया, करता शुभ व्यवहार ॥

विरक्त कौन ?

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'महाराज, किसी सच्चे विरक्तके हाथ लगें तो श्रीविग्रह स्थान ग्रहण करे !' परम प्रतापी महाराज भोज चिन्तामें पड़ गये राजज्योतिषीकी यह बात सुनकर। कोई सच्चा विरक्त क्यों राजसदन आयेगा। उसे धारा नगरीके और भोजके वैभवसे प्रयोजन ! लेकिन मन्त्रीको आदेश दे दिया गया कि वे ऐसे विरक्तके अन्वेषणका पूरा प्रयत्न करें।

बड़े उत्साहसे मन्दिरका निर्माण किया गया था। कला मूर्तिमती हो उठी थी। भोजराजकी श्रद्धा और राजज्योतिषीका शास्त्रज्ञान साकार हुआ। कहीं कोई बाधा नहीं पड़ी। जितना समय लगनेका अनुमान था, कार्य उससे पहिले ही पूर्ण हो गया था।

भगवान् शंकरका यह श्रीविग्रह स्थापित होना था लिंगविग्रहके पृष्ठमें। मन्दिरके अन्तर्गृहके मध्य लिंगमूर्ति और भित्तिमें निर्मित सिंहासनपर श्रीआशुतोष। लिंगविग्रह स्थापित हो गया और श्रीमूर्ति सिंहासनपर पहुँचायी गयी; किंतु वह सीधी बैठती ही नहीं। बहुत प्रयत्न हो चुके कभी एक ओर और कभी दूसरी ओर मूर्तिका मुख तिरछा हो जाता है। जब मानव-प्रयत्न विफल हो गये, महाराजने अपने राजज्योतिषीके श्रीचरणोंमें मस्तक झुकाया—'क्या कारण है कि प्रभु आसन स्वीकार नहीं कर रहे हैं ?'

ज्योतिषीजी केवल ज्योतिषी नहीं थे। कहा जाता है कि धारापुरीकी अधिष्ठात्री महाशक्तिने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये थे। वे उन श्रीजगदम्बाके नैष्ठिक आराधक थे। महाराजके प्रश्नका उत्तर देनेके लिये उन्होंने न पञ्चाङ्ग खोला और न अपनी पट्टीपर कोई गणित किया। वे चुपचाप वहाँसे गये और भगवतीके मन्दिरमें श्रीमूर्तिके सम्मुख आसन लगाकर बैठ गये।

'महाराज, आपने श्रीविश्वनाथको यहाँ आराध्यरूपमें प्रतिष्ठित करनेकी इच्छा नहीं की है।' पूरे पाँच घंटे बाद राजज्योतिषी मन्दिरसे निकले और सीधे राजसदन पहुँचे। तत्काल महाराजने स्वयं उनके चरणोंमें आकर वन्दना की। जो कुछ आभास उन्हें मिला था, वही वे बता रहे थे—'ज्ञान एवं विद्याके आदिगुरु यहाँ श्रीदक्षिणामूर्तिके रूपमें आपको प्रतिष्ठित करने हैं। इस रूपमें वे किसी नरेशका दिया आसन ग्रहण कैसे करें ? कोई अधिकारी सच्चा विरक्त उन्हें आसन ग्रहण करावे, वे ठीक आसन ग्रहण कर लेंगे।'

भगवान् शंकरका वह दक्षिणामूर्ति-विग्रह—श्रीमूर्ति जब आयी थी, उसे देखकर महाराज भावविभोर हो गये थे। जिसने देखा—यही लगा कि प्रभु साक्षात् उपदेश करने आ बैठे हैं।

'धाराको महाशक्तिकी अनुकम्पा पहलेसे प्राप्त है।' श्रद्धाभरित स्वरमें श्रीविग्रहपर दृष्टि पड़ते ही राजज्योतिषीने कहा था—'अब ज्ञानके अधिष्ठाता आपकी श्रद्धा स्वीकार करके स्वयं आचार्यरूपमें आ गये हैं।'

'आपके श्रीचरणोंका अनुग्रह।' महाराजने सादर मस्तक झुकाया था।

धारा विद्वानोंकी नगरी; किंतु काशी तथा सुदूर दक्षिण प्रतिष्ठानपुर (पैठण) तकसे कर्मकाण्डके विद्वान् आमन्त्रित हुए। प्राणप्रतिष्ठाकी समस्त विधि सावधानीपूर्वक सम्पन्न की गयी। विधिके ज्ञानमें न त्रुटि थी, न उसके पालनमें प्रमाद हुआ। यजमानकी श्रद्धा कहीं शिथिल नहीं हुई। शुद्ध सामग्री, सम्यक् विधि, श्रद्धासंयुक्त शास्त्रपूत यजमान और विधिज्ञ संयमी अप्रमत्त ऋत्विक्—प्रतिमामें प्राण प्रतिष्ठित हो गये, यह लक्षित कर लेना कठिन क्यों होने लगा।

सब सानन्द हुआ; किंतु जब श्रीविग्रहको उनके सिंहासनपर पहुँचाया गया—पूरे प्रयत्नके पश्चात् एक स्वरसे विप्रवर्गने कह दिया—'राजन् ! कोई ऐसा कारण अवश्य है, जिससे प्रभु आसन नहीं ग्रहण कर रहे हैं।'

वह कारण—कितना अद्भुत कारण निकला वह।

× × ×

महाराज भोजकी ओरसे कुछ अच्छे विद्वान् नियुक्त कर दिये गये हैं, अखण्ड यज्ञ चल रहा है। महामन्त्रीने अपने निपुणतम सेवक नियुक्त कर दिये हैं—विरक्त ढूँढ़नेका प्रयत्न चल रहा है। राजज्योतिषीने अपने कुछ शिष्य नियुक्त कर दिये हैं—भगवतीकी सविधि अर्चना चल रही है।

सब चल रहा है; किंतु दक्षिणामूर्ति भगवान् शिवका श्रीविग्रह आसन नहीं ग्रहण करता। साधु आते हैं—संन्यासी, वैष्णव, संतमतानुयायी, जटाधारी, मुंडितकेश, भस्मधारी, गैरिकवस्त्र, श्वेतवस्त्र, पीतवस्त्र या केवल कदली-पत्रकी कौपीन लगानेवाले। दिगम्बर अवधूत भी आये। जिनकी त्याग-तपस्याकी ख्याति थी, उन्हें महामन्त्री स्वयं आदरपूर्वक ले आये। निष्परिग्रह, अनिकेत, उग्रतम तपस्वी—सभी तो आ गये। काष्ठमौनी, ऊर्ध्वबाहु, सदा खड़े रहनेवाले, पता नहीं कितने और कैसे-कैसे साधु आये। जिनसे बड़ी आशा थी, कुछ नहीं हुआ उनसे भी। पूरे तीन वर्ष होनेको आये—श्रीविग्रह सम्मुख आसनपर नहीं आया।

किसीने कुछ अनुष्ठान बताया, किसीने विशेष जप, यज्ञ अथवा अर्चनकी आवश्यकता सूचित की। सब सम्पन्न हुए। किसी असफल साधुका तिरस्कार नहीं हुआ। कोई उपेक्षित–तिरस्कृत न हो जाय, महाराजने इसके सम्बन्धमें अधिकारियोंको सावधान कर दिया था। जो असफल होते थे—उनका चित्त खिन्न हो, स्वाभाविक था; किंतु राज्यके कर्मचारी उन्हें आदरपूर्वक ही विदा करते थे।

'मेरा पाप—मेरे ही किसी अपराधका यह परिपाक है।' महाराज खिन्न रहने लगे। उनकी मुखश्री म्लान हो गयी। शरीर कृश होने लगा। वे प्रातःस्नान करके जब अर्चनके लिये मन्दिरमें उपस्थित होते, अश्रु रोक नहीं पाते थे।

'मेरे राज्यमें न सही, पवित्र भारतभूमिमें तो वीतराग महापुरुष हैं ही।' महाराजने अन्तमें एक दिन कातर होकर राजपुरोहितके चरण पकड़ लिये—'भोज प्राण देकर भी ला सके तो उन्हें धारापुरी ले आयेगा। आप प्रयत्न करें और ऐसे पुरुषका पता न लगे, मैं विश्वास नहीं कर सकता।'

'मैंने प्रयत्न करनेमें कोई प्रमाद नहीं किया है।' राजपुरोहितने तनिक गम्भीर होकर कहा—'किंतु लगता है, हमारी परखका मापदण्ड ठीक नहीं है। ऐसी अवस्था-में बात मानव-प्रयत्नकी रह नहीं जाती। मेरा तो एक ही आश्रय है। आप चिन्ता न करें, पुत्र जब आग्रह करता है, दयामयी माँको उसका बालहठ पूर्ण तो करना ही पड़ता है।'

महाराजको आश्वासन प्राप्त हुआ। राजपुरोहितने भगवतीके मन्दिरमें जो आसन नित्य अर्चाके लिये लगाया, उससे उठे ही नहीं। मध्याह्न हुआ और बीत गया। शिष्योंमें, घरके सदस्योंमें व्यग्रता आयी। तृतीय प्रहर भी बीत गया और रात्रिका अन्धकार भी अन्तमें फैलने लगा।

'राजपुरोहितने आज जलग्रहण नहीं किया। वे अपने आसनसे न उठे हैं, न हिले हैं। उन्होंने पलकेंतक नहीं खोलीं। किसीका पुकारना सुनते नहीं। बंद नेत्रोंसे अविराम अश्रु चल रहे हैं।' समाचार महाराजको मिला।

'आचार्यने उपवास किया और इस अधमने भोजन किया है!' महाराजके पश्चात्तापका पार नहीं था। 'भोज अब तबतक मन्दिरसे नहीं उठेगा, जबतक आचार्य सुप्रसन्न नहीं उठते।'

सायंकालीन भोजन न राजसदनमें किसीने किया और न राज्यके उच्चकर्मचारियोंके गृहोंमें। राजपुरोहितके घर तो पूरे दिन ही सब उपोषित रहे। किंतु मन्दिरमें भीड़-भाड़ महाराजने नहीं होने दी।

पूजा हुई, आरती हुई, रात्रिका नैवेद्य अर्पित हुआ। आराधक स्थिर बैठा रहे तो आराध्या शयन कर लेगी? भगवतीकी शयन-आरती नहीं की मन्दिरके मुख्य पुजारीने। वे बाह्यद्वार बंद करके स्वयं श्रीमन्दिरमें एक ओर आसन-पर ध्यानस्थ बैठ गये।

'माँ! कृपामयी!' मध्यरात्रि व्यतीत हो चुकी थी, जब राजपुरोहितके स्वरने महाराज तथा पुजारी दोनोंको चौंका दिया। पता नहीं कब कैसे दोनोंको बैठे-बैठे ही तन्द्रा आ गयी थी। दोनोंने देखा—राजपुरोहित प्रतिमाके सम्मुख साष्टाङ्ग प्रणिपात कर रहे हैं।

'महाराज! आप राजसदन पधारें।' तनिक स्वस्थ होकर राजपुरोहितने भोजको देख लिया—'जब मैंने कार्यभार स्वीकार कर लिया, हम चिन्ता क्यों करें?'

मध्य रात्रिके पश्चात् उस दिन पुजारीने देवीकी शयन-आरती की।

× × ×

सेठ लक्ष्मीचन्द इस बार स्वयं निकले हैं अपने दलके साथ। अवस्था अधिक हो गयी; इसलिये अब सेठजी छोटी यात्रापर ही कभी-कभी निकलते हैं। लड़के यह काम सम्हाल लेते हैं। वैसे सेठजी बनजारे हैं। उनका काम ही ऊँट, बैल, खच्चर लादकर दूर-दूरके नगरोंकी यात्रा करना है। गद्दीपर उनका व्यापार नहीं चलता।

बहुत छोटी टोली थी जब सेठ अमीचन्दने कारबार अपने पुत्र लक्ष्मीचन्दको दिया था। अब उस बातको युग हो गये। अब तो सात बड़े दल चलते हैं लक्ष्मी-चन्दजीके। सातों लड़कोंने अपने-अपने व्यापारीदल बना लिये हैं। कभी-कभी सेठजी भी एक छोटी आठवीं टोली बनाकर निकल पड़ते हैं।

बनजारेकी टोली अपने-आपमें एक पूरा राज्य होता है। ऊँट, खच्चर, घोड़े, बैलगाड़ियाँ और पैदल भी। व्यापारकी कोई निश्चित वस्तु नहीं। जहाँ जो वस्तु ठीक मूल्यपर मिली; लाद लिया। जहाँ जिसके ठीक दाम लगे, बेच डाला। व्यापारकी वस्तुओंके साथ बर्तन, सीधासामान, कपड़े-बिछौने, वैद्यजीका औषधालय और एक छोटी किंतु सधे वीरोंकी शस्त्रसज्ज सेना। यह सेना न हो तो बन-जारे दिन-दोपहर लूट लिये जाया करें।

सेठ लक्ष्मीचन्दकी टोलीमें एक विशेषता प्रारम्भसे रही। इस टोलीके साथ ठाकुरजीकी पालकी चलती है। पुजारी महाराज और ठाकुरजीके सेवक चलते हैं। पता नहीं क्यों चलते हैं ये सब; क्योंकि पूजा तो सेठजी स्वयं दोनों समय करते हैं। पानी पड़े या पत्थर, ठाकुर-पूजाके लिये दोनों समय टोलीको रुकना ही पड़ता है।

रुक तो जाते हैं सेठजी दो-दो दिन—उन्हें पता-भर लगना चाहिये कि कोई उत्तम रत्न या बहुमूल्य वस्त्र मिल सकता है। कोई काष्ठ, हाथी-दाँत या अन्य आधार-पर बनी कलाकृति—सेठजीको पसंद भर आ जाय, वे उसे लेकर जायँगे। इतने अधिक मूल्यमें ली गयी वे वस्तुएँ जब उन्हें बेचनी नहीं—बड़े आदमीकी एक संग्रह-प्रवृत्तिके अतिरिक्त आप क्या कहेंगे। यों सेठजी कहते हैं—'लालजी! इसे पाकर प्रसन्न होंगे।'

मोटा कपड़ा, साधारण चटाई, फटे-पुराने जूतेसे जो इस बुढ़ापेमें, इस सम्पन्नतामें भी अपना काम चला लेता है, उसकी सनक ही तो है यह—'लालजी!' अपने ठाकुर-जीको सेठजी यही कहते हैं। यात्राके विषम दिनोंमें भी लालजीके लिये दस-पंद्रह व्यञ्जन बनेंगे, कहीं कोई उत्तम उद्यान दीखा तो उसीके पुष्प चाहिये। अनेक बार टोली इस सनकके कारण बहुत उलझनमें पड़ जाती है। अ-सुविधा और कष्ट—किंतु सेठजी जब यह सब सुनें।

'लालजी!' बूढ़े सेठको न अपने भोजनका स्वाद,

न धनकी चिन्ता। लड़कोंके आग्रहतक वह नहीं सुनता। उसे तो एक सनक है—लालजीके लिये उसे पसंद आ जाय तो एक पुष्प, एक फलके लिये वह पूरी थैली उलट देगा।

यह सनकी सेठ लक्ष्मीचन्द अपनी टोली लिये पहुँच गया धारापुरी। क्या विशेषता है इसमें कि महाराज उसे राजसभामें सम्मानित करनेवाले हैं। राजपुरोहित उसके सम्मुख आदरसे झुके जाते थे। हुआ कुल इतना था कि सेठने स्नान किया, पूजा की और एक लोटा जल लिये शिवमन्दिर चले गये। जल चढ़ाकर घूमे तो दक्षिणामूर्ति-विग्रहपर दृष्टि पड़ी। तिरछा श्रीविग्रह—सेठने श्रीमूर्तिके घुटनोंपर हाथ रक्खा सहज—'प्रभु यदि सम्मुखासीन होते!' मूर्ति जैसे स्वयं घूमकर सीधे आसनपर आ गयी। अब लोग कहते हैं—'सेठजी सच्चे विरक्त हैं। उन्हें किसी विषयमें आसक्ति नहीं।' किंतु उन्हें यह जो 'लालजी' की आसक्ति है?

भारतका एक बढ़ता हुआ दुर्व्यसन—धूम्रपान

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

पता नहीं क्यों, पर हम सब यह अनुभव करते हैं कि बुरी आदतोंको लोग जितना शीघ्र और सरलतासे ग्रहण कर लेते हैं, उतना अच्छी बातों एवं सुसंस्कारोंको नहीं ग्रहण कर पाते। इसीलिये किसी भी बुराईके उन्मूलनके लिये बहुत बड़े विरोध, आन्दोलन, यहाँतक कि कड़े कानूनकी आवश्यकता होती है। अन्यथा चेपी रोगोंकी तरह उसका विस्तार इतना अधिक बढ़ जाता है कि सामाजिक शरीर जीर्ण-शीर्ण और दूषित बन जाता है। जहरका प्रभाव फैलते जैसे देर नहीं लगती, वैसे ही बुरी आदतों—दुर्व्यसनोंका प्रभाव बहुत तेजीसे और व्यापकरूपमें फैल जाता है। नशीली चीजोंमें विषका कुछ अंश होता है, इसलिये थोड़ी देरतक उनके सेवनसे कुछ शक्ति और मस्ती पानेका लोग अनुभव करते हैं परंतु अन्ततोगत्वा विष तो मारक ही होता है और धीरे-धीरे वह व्यक्तिको अपने वशमें करके पराधीन एवं निष्क्रिय बना डालता है। तम्बाकूका दुर्व्यसन भी ऐसा ही एक मारक या घातक व्यसन है जिससे शरीर, मन, धन सभी कुछ बरबाद होता है—लाभ कुछ भी नहीं। अनेक अनुभवी डाक्टरोंने उसके द्वारा शरीरपर पड़नेवाले बुरे प्रभावोंपर विशद प्रकाश डाला है और धनकी महान् हानि तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अनुभव करता ही है। लाभ चाहे कुछ भी न हो, पर एक बार इस दुर्व्यसनमें फँस जानेपर छुटकारा मिलना बहुत ही कठिन हो जाता है।

तम्बाकूकी उत्पत्ति एवं उसका मानव-समाजद्वारा खाने-पीनेके रूपमें विविधरूपमें उपयोग किये जानेकी कहानी ज्यादा प्राचीन नहीं है। इसकी उत्पत्ति और भारतमें इसके प्रचारको करीब ५०० वर्ष ही हुए हैं। बतलाया गया है कि सन् १४९२ में जब कोलम्बसका काफिला क्यूबा पहुँचा, तब उसने देखा कि वहाँके आदिवासी तम्बाकूसे अपने शरीर सुगन्धित करते हैं। अपनी दूसरी यात्रामें उसने देखा कि अब उन लोगोंमें तम्बाकू सूँघनेकी आदत पड़ गयी है। सन् १५०२ में स्पेनका एक काफिला दक्षिण अमेरिकाके किनारे पहुँचा तो उन्होंने वहाँके आदिवासियोंको तम्बाकू खाते हुए देखा।

तम्बाकूकी जानकारी और उसके उपयोगकी रीति सर्वप्रथम अमेरिकासे यूरोप, फिर इंग्लैंड तथा अन्य देशोंमें पहुँची। सन् १५०८ के लगभग पोटॅटो और टोमॅटोकी इस साथिन टोबॅको (तम्बाकू) को पुर्तगाली हमारे देशमें लाये। उस समयसे भारतके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें इसकी खेती शुरू हुई और आज बम्बई, बिहार, बंगाल, आंध्र,

मद्रास, मैसूर, आसाम आदि प्रदेशोंमें इसका उत्पादन प्रधानरूपसे होता है। यहाँकी आबोहवा उसे ऐसी अनुकूल पड़ी कि अब भारतके ये प्रदेश तम्बाकू-उत्पादनके लिये प्रसिद्ध हो गये हैं। आंध्र प्रदेश तो तम्बाकू-उत्पादनके केन्द्रके रूपमें बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। देशके तम्बाकूके उत्पादनका लगभग ४० प्रतिशत और सिगरेटें बनानेके लिये इस्तेमाल की जानेवाली वर्जिनियां तम्बाकूका करीब ९० प्रतिशत भाग यहीं उत्पन्न होता है। १९५८ में हमारे देशने तम्बाकूके निर्यातद्वारा १३.५ करोड़से भी अधिक रुपयेकी वैदेशिक मुद्राएँ अर्जित कीं। हमारे देशमें सिगरेटोंकी वर्तमान वार्षिक खपत अंदाजन ३२ सौ करोड़ सिगरेटोंसे भी ज्यादा की है।

उपर्युक्त बातें गोल्डन टोबेको कम्पनीद्वारा विज्ञापित की गयी हैं। इससे भारतमें तम्बाकूका उत्पादन एवं प्रचार किस सीमातक पहुँच गया है यह भलीभाँति विदित हो जाता है।

तम्बाकूका सेवन अनेक रूपोंमें किया जा रहा है। सूँघने और पीनेका तो व्यापक प्रचार है ही। नगरोंमें ही नहीं, छोटे-छोटे गाँवोंमें और वयस्क व्यक्तियोंमें ही नहीं, बालकों एवं स्त्रियोंमें भी यह दुर्व्यसन अधिकाधिक फैलता जा रहा है। इससे कंठकी नालियाँ और शरीरके भीतरी कोमल भागोंपर अत्यन्त हानिकारक प्रभाव पड़ता है। तम्बाकू मुखमें दुर्गन्ध और दाँतोंपर मैल उत्पन्न करती है और मस्तिष्कको बिगाड़कर आयुको कम करती है। उसके धुएँसे फेफड़ा बिगड़ता है, व्यसन पड़ जानेपर इसके बिना खाये, पीये या सूँघे व्यक्ति कुछ काम नहीं कर पाता, उसकी नसें ढीली पड़ जाती हैं। पहले तो केवल चिलमके रूपमें ही इसका व्यवहार बढ़ा, फिर चूनेके साथ जरदा या तम्बाकू खाने और नसवारके रूपमें सूँघनेका। आजकल पानमें भी जरदा खानेका खूब प्रचार बढ़ गया है। बीड़ी और सिगरेटके प्रचारकी तो कोई सीमा ही नहीं रही। करोड़ों रुपये विशेषतः मध्यम वर्ग और जनसाधारणके बरबाद होते हैं। सरकारको कुछ आमदनी जरूर हो जाती है। सरकारने जब देखा कि इसका उत्पादन और खपत खूब बढ़ने लगी है, तब उसने इसपर बहुत बड़ा टैक्स लगा दिया, जिससे करोड़ों रुपयेकी आमदनी होने लगी है। अतः देशके लोगोंके लिये चाहे वह कितनी ही हानिकारक और घातक हो, पर सरकार अपनी आमदनीके इस बड़े जरियेको कैसे छोड़ सकती है? जनताका स्वास्थ्य जा चूल्हेमें और उसकी आर्थिक स्थितिपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता हो तो बलासे, पर सरकारको तो अपनी आमदनी सुरक्षित रखना तथा बढ़ाना है। अतः उसका विरोध, राष्ट्रीय यानी जनताकी सरकार होनेपर भी नहीं किया जा रहा है। एक ओर जनसमूहके मानस-स्वास्थ्यकी बुरी तरह हत्या करनेवाले गंदे सिनेमा और दूसरी ओर तम्बाकू, जनताकी शारीरिक और नैतिक तथा आर्थिक बरबादी असीमरूपमें कर रहे हैं। अब तो भारतीय जनताका भगवान् ही मालिक है!

भारतीय संत-महात्माओंने समय-समयपर जनतामें जो भी दुर्गुण एवं दुर्व्यसन देखे, उनके प्रति विरोधी स्वर प्रकट किया और जनताको बुराइयोंसे बचाने एवं हटानेका सत्प्रयत्न किया। पर आज संतोंकी वह सामाजिक सेवा भी नहीं दिखायी दे रही है—छुटपुटरूपमें कभी किसीने कुछ विरोधमें कह दिया हो पर जैसा विरोधी आन्दोलन उन्हें उठाना चाहिये था—गाँव-गाँव, घर-घर और व्यक्ति-व्यक्तिके पास पहुँचकर अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व और अनुभवपूर्ण वाणीसे जो संदेश प्रचारित करना चाहिये था, नहीं कर रहे हैं। अपनी मान-प्रतिष्ठाको बनाये रखने और सस्ते यशके प्रलोभन तथा पारस्परिक विवाद-संघर्षमें ही अधिकांश संन्यासियोंका समय एवं शक्ति बरबाद हो रही है तो अन्य लोगोंसे तो आशा ही क्या की जाय? राष्ट्रीय नेताओंका भी यही हाल है। कुछ इने-गिने व्यक्ति अच्छा काम कर रहे हैं और उनका प्रयत्न सराहनीय है।

आचार्य विनोबा, संत तुलसी आदिने इस दिशामें काफी कार्य किया है। अन्य संतगण भी उनका अनुकरण करें तो जन-जनमें धूम्रपान-परित्यागका काफी कार्य हो सकता है।

१७वीं शताब्दीतक तो तम्बाकूका प्रचार राजाओं, बादशाहों और बड़े-बड़े आदमियोंतक ही सीमित था, फिर उनके हाजरियोंको इसका चस्का लगा। १८वीं शताब्दी-में जनसाधारण भी इसके चंगुलमें फँस गये। तबसे कई जैन तथा अन्यान्य संतोंके तम्बाकू-त्यागके प्रेरक गीत मिलने आरम्भ होते हैं। उनमें तम्बाकूसे होनेवाली हानियों-को बतलाते हुए उसको त्याग करनेका उपदेश दिया गया है। गुरु नानकने तो इसको सिख-धर्ममें सर्वथा वर्जित कर दिया है। ऋषि दयानन्दने भी इसका बड़े जोरोंसे विरोध किया था। इस युगके महान् महात्मा एवं राष्ट्रपिता गांधीने २९ अगस्त, १९४६ के हरिजनमें इस विषयपर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था—'मुझे यह देखकर बहुत दुःख होता है कि तम्बाकूके सेवनका रिवाज दिनों-दिन बढ़ता जाता है। मुझे मदिरा और तम्बाकू दोनोंका उपयोग अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता है, परंतु तम्बाकू तो मदिरासे भी अधिक हानिकारक है; क्योंकि इसका प्रभाव तुरंत दीखने लगता है। यह धनकी बरबादीके साथ शरीरके लिये भी हानिकारक है। इससे श्वासमें दुर्गन्ध हो जाती है, दाँतोंका रंग खराब हो जाता है, और किसी-किसी दशामें इससे विषफोड़ कैंसर भी हो जाता है।' टॉल्स्टॉयने एक शराबीकी कहानी प्रकाशित करते हुए लिखा था कि 'वह जब किसीको मार डालनेकी कल्पना बनाता, तब उसे उस समयतक पूरा नहीं कर सकता था जबतक वह एक सिगार नहीं पी लेता था। सिगार पीकर वह एकदम हँसता हुआ उन्मत्त हो जाता और कहता मैं कैसा डरपोक हो गया था। तब तलवार हाथमें लेता और अपना काम कर डालता था। टॉल्स्टॉयने जो कुछ लिखा है स्वयं अनुभव करके लिखा है।' महात्मा गांधीने मदिरा और तम्बाकू दोनों दुर्व्यसनोंसे जनताको मुक्त करनेका प्रयत्न किया था। एक बार तो उनकी प्रभावशाली वाणीने जादूका-सा असर किया और हजारों व्यक्तियोंने तम्बाकूका त्याग कर दिया। यदि वह आन्दो-लन व्यापक समयतक चलता तो बहुत बड़ा लाभ होनेकी सम्भावना थी। पर गांधीजी अन्य आवश्यक राष्ट्रीय कामोंमें लग गये, तम्बाकू त्याग करवानेके प्रयत्नमें आवश्यक समय एवं शक्ति न दे पाये। राष्ट्रीय सरकारने मदिरा-निषेधका तो फिर भी कई प्रान्तोंमें कुछ प्रयत्न किया है—उसके लिये कई कड़े कानून बनाये हैं, पर तम्बाकूके व्यापक प्रचारको रोकनेका तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। यह जनताकी सरकारके लिये अवश्य ही शोचनीय बात है।

पश्चिमी बंगाल-सरकारने १६ वर्षके बालकोंके लिये सिगरेट, बीड़ी आदिका सर्वथा वर्जन किया था पर उसपर कोई ध्यानपूर्वक कार्यवाही नहीं की जा रही है। केवल कानून बना देना ही किसी बुराईको दूर करनेके लिये पर्याप्त नहीं है, उस कानूनका कड़ाईसे पालन भी किया जाना चाहिये। जनतामें तम्बाकूकी बुराइयोंके सम्बन्धमें खूब प्रचार होना चाहिये। इधर अमेरिका और यूरोपके प्रसिद्ध डाक्टरोंने भी अनेक घातक रोगोंका कारण तम्बाकू-सेवनको ही बतलाया है। कैंसर-जैसा भयानक रोग ८० प्रतिशत तम्बाकू-सेवन करनेवालोंमें होनेकी बात कही गयी है, फिर भी भारतीय जनताके स्वास्थ्यको ध्यानमें रखनेवाला विभाग चुप बैठा है, यह बड़े आश्चर्य और खेदकी बात है। अपने सामने, अपनी जानकारीमें जनस्वास्थ्य जिन कारणोंसे नाश होता है, उसके प्रतीकारमें कुछ न करना, वास्तवमें बड़ी कर्तव्यविमुखता है!

सिनेमा भी अनेक दुर्गुणोंके प्रचारका साधन बन गया है। भारतके नैतिक जीवनपर उसका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ रहा है। पर उसके सम्बन्धमें तो कुछ चर्चा पत्र-पत्रिकाओंमें देखनेको मिलती है। चाहे सरकार उसके सुधारका प्रयत्न जागरूकतासे न कर पा रही हो, पर जनताका विरोधी स्वर सामने तो आ रहा है। पर तम्बाकूके

लिये तो वैसी विरोधी चर्चा भी नहीं हो रही है, कभी क्वचित् किसीका लेख किसी साधारण पत्रिकामें छप जाता है पर उससे कोई काम नहीं बनता। आवश्यकता है संगठितरूपसे विरोधी आवाज बुलन्द करनेकी। जन-जनमें तम्बाकूकी खराबियोंका व्यापक प्रचार हो, संत-महात्मा गाँव-गाँवमें घूमकर तम्बाकू-त्यागका जोरोंसे उपदेश दें। राष्ट्रीय सरकार एवं प्रान्तीय सरकारों तथा स्वास्थ्य-विभागके द्वार खटखटाये जायँ। राष्ट्रीय नेताओंतक प्रबल आवाज पहुँचायी जाय। आर्थिक हालत भारतकी बहुत ही खराब है और तम्बाकूद्वारा तो और भी बदतर होती जा रही है। साधारण व्यक्ति जो रुपया दो रुपया रोज बड़े कठिन परिश्रमसे कमाता है—कुछ लोग तो कई आने भी नहीं कमा पाते, पर उनके भी कुछ पैसे या आने बीड़ी, सिगरेट, जरदामें खर्च हो जाते हैं—घरमें चाहे खानेके लाले पड़े—बच्चे चाहे भूखसे बिलबिलाते रहें, स्त्रियाँ चाहे खाद्य पदार्थोंके अभावमें मन मसोसती एवं चीत्कार करती रहें, पर जिसे तम्बाकूकी बुरी लत लग गयी है उसे तो उसके बिना चैन नहीं। कई प्रदेशोंके गाँवोंकी स्त्रियोंमें तथा पढ़ी-लिखी कहानेवाली महिलाओंमें भी बीड़ी, सिगरेट, जरदेका प्रचार बहुत बढ़ रहा है। घरवाले किसी भी तरह कष्ट करके या उधार लेकर अपने बच्चोंको पढ़ानेके लिये स्कूल-कालेजोंमें भेजते हों पर वे विद्यार्थी जो उनकी आशाके केन्द्र हैं, दूसरोंकी देखा-देखी धूम्रपानमें प्रवीण होकर घरके पैसोंको बरबाद करने लगते हैं। दूध और घीके लिये पैसा न हो पर सिगरेट, चाय और सिनेमाके लिये पैसा चाहिये ही। नहीं मिलनेपर ठगी और चोरी सीखेंगे ही। दुःख है कि अच्छे-अच्छे बहु-संख्यक विद्यार्थियों, अध्यापकों, सरकारी अधिकारियों तथा विद्वानोंको भी सिगरेट पीते देखा जाता है।

अब हम १८ वीं शताब्दीके एक जैनमुनि विशिष्ट विद्वान् और कवि धर्मसीके द्वारा रचित एक राजस्थानी गीत दे रहे हैं जिसमें उन्होंने तम्बाकू-त्यागके लिये उद्बोधन दिया है। वे लिखते हैं कि 'हे चतुर व्यक्ति! तम्बाकूका सेवन छोड़ो; क्योंकि इसमें अनेक दोष हैं। अतः इसकी ओरसे अपने मनको हटाओ। विवेकसे काम लो। इस तम्बाकूमें न स्वाद है न मिठास, पर दोष अनेक होनेपर भी जिसे इसका व्यसन लग गया, छोड़ नहीं पाता। पूर्वपुण्यके उदयसे यदि तुम्हें दो पैसे मिले हैं तो दूध, दही, घीका सेवन क्यों नहीं करते, जिसमें लाभ-ही-लाभ है? तम्बाकूसे होठ और दाँत काले होते हैं। मुखसे दुर्गन्ध आती है, छाती जलती है और श्वास सूखने लगता है। एक-दूसरेकी जूठी बीड़ियोंको जात और कुजातका विचार किये बिना मुँहमें डाल लेते हो, दूसरेका थूक अपने मुँहमें लगता है। धार्मिक दृष्टिसे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति—इन पाँच स्थावर और बेइन्द्रिय आदि जीवों-का इससे विनाश होता है। जिन जीवोंको तुम तम्बाकू-सेवनद्वारा मार रहे हो, एक दिन वे जीव तुमसे बदला लेनेवाले हैं। दूसरोंको आदरके साथ तम्बाकू पिलाकर दोनोंका अहित कर रहे हो। चेतो।'

तम्बाकू-त्याग सझाय

(ढाल-आज निहोजी दीसे नाहलौ।)

तुरत चतुर नर तम्बाकू तजौ, इण में दोष अनेक।
बिरती बूरो पाछौ मन बालिनै, यारू धरिय विवेक ॥१॥ तुरत०
स्वाद नहीं इण मांहै सर्वथा, मांहै नहीय मिठास।
दूषण देखे तो पिण नवि तजै, पडियौ विसन नै पास ॥२॥ तु०
कूटउ पुह अछै छकायनो, सुंस करौ मन शुद्ध।
पोतै पुन्य हुवै तो तुम पियौ, दही घृत साकर दूध ॥३॥ तु०
होठ विन्हेइ दांत काला हुवै, बलि मुखि भुंडी बास।
बलै तम्बाकू तिम छाती बलै सोषायै तिम स्वास ॥४॥ तु०
नइ ऐठी मुख घालै नवि गिणै, काई जात कुजात।
परनौ थूक तिकौ मुह में पड़े, बिसन तणी ए बात ॥५॥ तु०

ऐसी ही एक राजस्थानी संतकी रचना और प्रचलित है—

छोड़ तमाखू मानवी रे तू मतना पीवै झैर।
झूठी तेरी मानता रे (भाई) झूठी तेरी ल्हैर ॥

हाथ-दाँत-मूँ-काळजै रे भर देवै दुरगंध।
धूँवो अँग काळो करै रे कर दे नैणां अंध॥
धनरो, तनरो, मानरो रे करै मोकळो नास।
छाती बाळै, मौत न रे ल्यावै बेगी पास॥
चिलम-चटोरो मानवी रे हुक्के रो सोखीन।
चाटै स रौ थूक नित रे हुयो बिसन आधीन॥
ले ल सोगन आज सूँ रे छोड़ बुरी आ बाण।
पी तूँ इम्रत राम रस रे पावै पद निरबाण॥

इसका अर्थ है—

अरे मनुष्य! तू तम्बाकू छोड़ दे, इस जहरको मत पी। (इससे कोई लाभ है यह) तेरी झूठी मान्यता है और इसमें आनन्द भी झूठा ही आता है। यह तम्बाकू हाथ, दाँत, मुँह, कलेजा—सबमें दुर्गन्ध भर देती है। इसका धूआँ सब अङ्गोंको काला कर देता है और इससे आँखोंकी रोशनी चली जाती है। यह तम्बाकू धनका, शरीरका, मानका बहुत अधिक नाश करती है। छाती जलाती है और मौतको शीघ्र पास ले आती है। जो चिलमचट्टू और हुक्केका शौकीन है, वह इस व्यसनके अधीन होनेके कारण सबका नित्य थूक चाटता है। अतः तू आजसे ही शपथ लेकर इस आदतको छोड़ दे तथा राम-रसरूपी अमृतका पान कर जिससे निर्वाण-पदकी प्राप्ति हो।

तम्बाकूके दुर्गुणोंके सम्बन्धमें कई राजस्थानी लोक-गीतोंमें भी अच्छा वर्णन मिलता है। डा० जे० डिक्सन-मेनने तम्बाकूमें अनेक प्रकारके विष होनेका विवरण देते हुए लिखा है कि तम्बाकूमें फरफ्यूरल नामक विष तो अत्यन्त भयानक है। निकोटीन नामक विष भी तम्बाकूमें पाया जाता है जिसकी एक बूँद खरगोशको, दो बूँद स्वस्थ बलवान् कुत्तेको क्षणभरमें यमलोक पहुँचानेके लिये यथेष्ट है। महात्मा गांधीने इसके विरोधमें लिखा था कि तम्बाकू मनुष्यके ज्ञानतन्तुओंको मलिन बनाती है। तम्बाकूका धुआँ आमाशयपर सीधा प्रभाव डालता है!

मूर्ति-प्रतिष्ठा

(श्रीरावी)

मेरा यह अबोध मस्तिष्क अपनी स्वप्नशालामें तुम्हारी एक मूर्ति स्थापित करके अपनी कौन-सी वेदना-हीन प्यास बुझाना चाहता है? जिस स्वप्न-संसारको निर्मल प्रकाश-किरणोंके स्थानपर एक श्वेत, कुछ-कुछ चमकीला धूम्र-समूह ही धुँधला-सा प्रकाश प्रदान करता रहता है, उसीमें तुम्हारे मोहन रूपकी एक अस्पष्ट-सी प्रतिमूर्तिको अपनी छातीसे लगाये हुए यह अपनी कौन-सी अस्फुट साध पूरी करना चाहता है? अपने दुःख-सुखसे भरी हुई इन्हीं भौतिक-सी परिस्थितियोंके बीच तुम्हारी उस प्रतिमूर्तिको वह कभी-कभी अपने साथ इतनी-इतनी देरतक क्यों रख पाता है?

जब कभी मेरे अज्ञात अन्तस्‌में तुम्हारे दर्शनोंके लिये एक हूक उठती होगी तब शायद तुम इसी रूपमें किसी अंशतक उसका उपचार करनेका उपक्रम करते हो। पर इसका फल ही कितना हो सकता होगा। इससे तो इतना ही होता है कि मैं अपनी जागृतिके क्षणोंमें तुम्हारे विषयमें कुछ अधिक सोचने लगता हूँ—पर यह सोच-विचार होना तो उदासीनतापूर्ण ही है।

मेरे अन्यतम रूप! जब मैं अपने उस धुँधले स्वप्नलोकमें तुम्हारी मूर्ति-निर्माणका एक असफल प्रयास करके एक जैसी-तैसी प्रतिमा बना ही लेता हूँ तब क्या वहाँसे लौटनेपर मुझे जो संकोच और अस्पष्ट दर्शन-की पीड़ा होती है उसका अनुमान तुम्हें नहीं होता? इस जटिल रहस्यपूर्ण प्रगति-समस्याको मेरे रूपधन! तुम कबतक सुलझाओगे?

[—एक तरुण साधककी डायरीसे ८-१०-३४]

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

देवप्रयागके बाद इस मार्गपर भागीरथीके दर्शन नहीं होते। आज ही हमारा रुद्रप्रयाग पहुँचना सम्भव नहीं था, चूँकि अँधेरा होनेपर इन मार्गोंमें मोटरें नहीं चलतीं, अतः लगभग ६ बजे संध्याको हम श्रीनगर पहुँचे और रात्रि मुकाम हमने श्रीनगरमें ही किया। यहाँ हमें एक नसीहत मिली। श्रीनगरके मोटर-स्टैंडपर ज्यों ही हमारी बस रुकी, एक सज्जनने हमारी अगवानी की। अपरिचित होते हुए भी परिचित भावसे बात करते हुए उसने कहा, 'चलिये साहब, डाकबँगलेमें चलिये।' हमें यह मालूम कर कि यहाँ डाक-बँगला है और उसमें हमें जगह मिल रही है, प्रसन्नता हुई। चूँकि यमुनोत्तरी-मार्गकी धर्मशालाओंके कष्टोंसे हम परिचित थे और गङ्गोत्तरी मार्गके डाक-बँगलोंके आरामदायक मुकामोंका भी हमें ज्ञान था। अतः स्वेच्छासे ही हम इस प्रयत्नमें रहते कि आगेकी हमारी यात्रामें हमें वनविश्रामालयों, डाक-बँगलोंमें ही स्थान मिले। फिर यहाँ तो डाकबँगलेमें ठहरानेके लिये आग्रह हो रहा था। अस्तु, हम उत्साहित हो आगे बढ़े और डाकबँगलेमें पहुँच डेरा डाल दिया। इस डाकबँगलेमें हम ठहर तो गये, किंतु रातमें काफी देरतक सो नहीं पाये। कुछ अन्य मेहमान भी इस बँगलेमें थे जो बँगलेके कम्पाउंडमें चारपाइयोंपर पड़े थे। बँगलेके बरामदेमें हमलोग पड़े थे। गरमीका मौसम था ही, फिर श्रीनगरकी समुद्र-सतहसे ऊँचाई केवल १७०६ फुट ही थी, अतः काफी गरम था। गोविन्ददास इस गरमीके कारण बँगलेके कम्पाउंडमें सोये थे। निकट ही चारपाइयोंपर पड़े मेहमान आपसमें खूब जोर-शोरसे बातचीत ही नहीं, हँसी-मजाक कर रहे थे। गोविन्ददासकी नींदमें खलल पड़नेपर जब गोविन्दप्रसादने उनके निकट जाकर निवेदन किया कि 'कृपाकर यदि बात ही करनी है तो आहिस्ता करें, दूसरोंके आरामका भी ख्याल रक्खें।' गोविन्दप्रसादका इतना कहना था कि ये मेहमान बिगड़ पड़े। बोले—'क्या आपलोगोंकी वजहसे हमलोग बात भी न करें। अगर आपको नींद नहीं आती है तो दूसरी जगह चले जाइये।' इन मेहमानोंका यह फरमान सुनकर गोविन्दप्रसाद चुप हो गये। कहनेको तो हमलोग बारह आदमी थे। हमारे साथ छै नेपाली भारवाहक, एक पण्डाजी और डंडीवाले थे। ये मेहमान केवल चार। चाहते तो इन्हें इस बदतमीजीका भी बदतमीजीमें जवाब देकर आसानीसे चुप करा देते। किंतु 'शठे शाठ्यम्' और 'कण्टकेनैव कण्टकम्' वाली उक्तिके कायल तो हमलोग थे नहीं। चुपचाप सभी बिस्तरोंपर पड़े रहे, तीसरे पहर हमलोगोंको नींद आ गयी। फिर हमें खबर नहीं, इन बिगड़े दिल मेहमानोंकी बकझक कब बंद हुई।

सबेरे तड़के ही उठकर अपना बोरिया-बिस्तर समेटने लगे। इसी समय बँगलेका चौकीदार एक लंबा-चौड़ा बिल लेकर हमारे पास पहुँचा। इस बिलमें गोविन्ददासका दो रुपया जोड़ा गया था और शेष सभीका एक-एक रुपया माँगा गया था। नियम यह था कि दलके नेताके प्रमुख व्यक्तिका दो रुपया और शेषका एक-एक रुपया किराया देना होता है। इसके सिवा सफाई आदिका व्यय भी ठहरने-वालोंके जिम्मे। रुपया तो हमने चुका दिया पर होटलोंको छोड़ डाकबँगलोंमें भी इस प्रकारका निरख, जो हमने कभी नहीं देखा था, वह भी आज यहाँ देखनेको मिल गया। उचित हो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड इन नियमोंपर पुनर्विचारकर व्यवस्थामें सुधार करे और यदि यह सम्भव नहीं है तो फिर इनकी जैसी व्यवस्था है उसे देखते हुए उन्हें डाकबँगला नाम न दे, होटल घोषित करे, जिसमें यात्रियोंको गलतफहमी तो न हो।

गढ़वाल जिलेमें कीर्तिनगर और श्रीनगर काफी प्रसिद्ध हैं। पहले हमें मार्गमें कीर्तिनगर मिला और कीर्तिनगरसे लगभग ढाई मील चलनेपर श्रीनगर। दोनों ही कस्बोंका नाम यद्यपि इनके नागरिक जीवनके अनुरूप अभी भी नहीं है। किंतु इनका नामकरण यहाँके राजाओंके नाम-पर हुआ है। यह प्रथा टेहरी-शासनके अधिकारी प्रतापशाहने अपने नामपर प्रतापनगर बसाकर प्रारम्भ की जिसका अनुकरण उनके उत्तराधिकारी महाराज कीर्तिशाहने कीर्तिनगर बसाकर किया। आगे इसी तरह श्रीनगर और नरेन्द्र-नगरका भी नामकरण हुआ।

श्रीनगर, गढ़वाल जिलेमें सबसे बड़ा नगर है। सन १८९४ ईस्वीमें चमोलीके निकट बिरही नदीमें एक पहाड़ आ टूटनेसे अलकनन्दामें जब बाढ़ आयी, तब श्रीनगर बह गया

था। वर्तमान श्रीनगर पुनः बसा और अब यह तार, डाकघर, टेलीफोन, अस्पताल, डाक-बँगला, धर्मशाला, पुलिसचौकी, गवर्नमेंट हायर सेकेण्डरी स्कूल तथा मन्दिरों आदिसे पूर्णतया सुसज्जित इस क्षेत्रका एक बड़ा और सुन्दर कस्बा बन गया है। यह समुद्र-सतहसे १९०० फुटकी ऊँचाई-पर स्थित है। यहाँके कुछ मन्दिरोंमें श्रीकमलेश्वर-मन्दिर बहुत प्राचीन है। कहते हैं, भगवान् विष्णुने वैकुण्ठ-चतुर्दशीको श्रीकमलेश्वरजीको प्रसन्न कर उनसे सुदर्शनचक्र प्राप्त किया था। इसीलिये यहाँ इसी वैकुण्ठ चतुर्दशीको मेला भी लगता है। पुत्र-कामनावाले नर-नारी अपने हाथोंमें घीका दीपक लिये भगवान् कमलेश्वरकी अपने मनोरथकी पूर्तिके लिये आराधना करते हैं।

श्रीनगरसे पौड़ी होकर दुगड्डा और कोटद्वार रेलवे स्टेशनको मोटर सर्विस जाती है। पौड़ीसे श्रीनगरके इस मोटर-मार्गकी दूरी केवल १९ मील है और श्रीनगरसे रुद्रप्रयागकी दूरी २२ मील। इन मोटर-मार्गोंके कारण श्रीनगरका मोटर-स्टैंड भी काफी समृद्ध दिखा। अनेक लारियाँ जा-आ रही थीं, अनेक खड़ी थीं। श्रीनगरके ही निकट लगभग ५ मील सुकरता चट्टी है। पूर्वकालमें कहते हैं श्रीशुकदेवजीने यहाँ तपस्या की थी और इसी कारण इस स्थानका नाम 'सुकरता' पड़ा।

डाकबँगलेसे विदा हो हम मोटर-मुकामपर पहुँचे और रुद्रप्रयागके लिये मोटरमें सवार हो गये। लगभग दस बजे ही हम रुद्रप्रयाग पहुँच गये। रुद्रप्रयागमें भी हम अलकनन्दा और मंदाकिनीके संगममें स्नान करना चाहते थे अतः रुद्रप्रयागसे हमने दोपहरकी मोटरसे जानेका निश्चय किया।

रुद्रप्रयागकी ऊँचाई अब २००० फुट हो गयी थी, अतः ऋषिकेश, देवप्रयाग और श्रीनगरकी अपेक्षा यहाँके मौसममें अब कुछ ठंडक आ गयी थी। जहाँतक अलकनन्दा और मंदाकिनीके संगमका सम्बन्ध है, इस संगमका दृश्य भी वैसा ही सुहावना था, जैसा भागीरथी और अलकनन्दाके संगमका देवप्रयागमें। एक बात और यहाँ देवप्रयागकी अपेक्षा कुछ अधिक आकर्षक थी। देवप्रयागमें भागीरथी और अलकनन्दाका जो मिलन हुआ है वह देवप्रयागकी समतल भूमिपर हुआ है, किंतु यहाँ कुछ ऊँचाई बढ़ जानेके कारण यात्रियोंको मंदाकिनी और अलकनन्दाके इस संगमपर पहुँचनेके लिये एक खड़ी सीढ़ियोंवाला छिड़ाव उतरना पड़ता है। इस छिड़ावके प्रारम्भसे संगमका दृश्य बड़ा मनोरम प्रतीत होता है। अलकनन्दा और मंदाकिनी दोनों बहनें समान भावसे आती हैं और एक सौहार्द स्थितिमें मिलकर मंदाकिनी अपने-आपको अलकनन्दामें समर्पित कर देती है। संगमपर जलका वेग यद्यपि तेज ही है, सो वह तो इस क्षेत्रकी महिमा ही है, किंतु भागीरथीके बहावका वेग यहाँ दिखायी नहीं देता। आगेके प्रवाहका नाम जिस प्रकार प्रयागराजमें यमुनाके मिलनेपर तथा देवप्रयागमें अलकनन्दाके विलीन होनेपर गङ्गाका रहता है, उसी प्रकार यहाँ भी मन्दाकिनीका विसर्जन होते ही आगे अलकनन्दा चलती है।

मंदाकिनीके हमें सर्वप्रथम दर्शन रुद्रप्रयागमें हुए। हम गङ्गाकी श्वेत धारा न जाने कबसे देखते आ रहे थे, यमुनाके श्याम-स्वरूपके भी हमने युगोंसे दर्शन किये थे। अलकनन्दाका रंग यमुनासे मिलता-जुलता था परंतु मंदाकिनीके जलमें हमने जो हरित झाईं देखी, वह इसके पूर्व किसी सरिताके सलिलमें नहीं देखी थी। यह हरीतिमा हरी काईकी गंदी हरियाली नहीं थी, अपितु हरी झाईं लिये हुए मंदाकिनीका नीर अत्यन्त निर्मल था। इस प्रवाहको निरख हमारे मनमें एकाएक महाकवि बिहारीद्वारा रचित सतसईका प्रथम दोहा स्मरण हो आया—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झाइं परत स्याम हरित द्युति होय॥

इस दोहेका स्मरण आते ही हमें मंदाकिनीके नीरमें नील, उसके फेनमें पीली मृत्तिकाके मिश्रणके कारण पीत और समस्त प्रवाहमें इस नील और पीत वर्णमें हरित झाईं दृष्टिगोचर हुई।

संगमके समीप ही श्रीरुद्रनाथजीका एक गुम्बददार मन्दिर है। कथा है, यहाँ नारदजीने संगीतशास्त्रका पूर्ण रहस्य जाननेके लिये शिवजीकी उपासना की और उनके सहस्रनामोंसे उनकी स्तुति की। शिवजीने प्रसन्न होकर नारदजीको संगीतशास्त्रका सम्पूर्ण भेद बता दिया। संगममें स्नानादि कर हमलोगोंने मन्दिरमें भगवान् रुद्रनाथजीका दर्शन और पूजन किया।

रुद्रप्रयाग भी एक अच्छा कस्बा है। यहाँ तारघर, टेलीफोन, अस्पताल, धर्मशाला, हायर सेकण्डरी स्कूल, संस्कृत-बालिका-पाठशाला और डाक-बँगला है तथा कुछ अच्छी दूकानें भी हैं।

रुद्रप्रयागसे दो धामोंको मार्ग जाते हैं। एक रास्ता अलकनन्दाका पुल पारकर मन्दाकिनीके किनारे-किनारे उत्तरकी ओर श्रीकेदारनाथको जाता है और दूसरा रास्ता अलकनन्दाके किनारे-किनारे पूर्व-उत्तरकी ओर श्रीबदरीनाथको जाता है। अधिकांश यात्री पहले केदारनाथजीके दर्शन कर इसी रास्ते लौट श्रीबदरीनाथको जाते हैं। यात्रा-विधानके अनुसार यात्रा-क्रम भी यही है। रुद्रप्रयाग एक तो अलकनन्दा और मन्दाकिनीके संगमके कारण तथा दूसरे केदारनाथ और बदरीनाथके दो भिन्न मार्गोंके यहाँ मिलनेके कारण यातायातका प्रमुख केन्द्र है। यात्रियोंका खासा जमाव रहता है।

अपने कार्यक्रमके अनुसार दोपहरकी मोटरसे रवाना हो हम मध्याह्नके उपरान्त काकड़ागाढ़ पहुँचे। रुद्रप्रयागसे काकड़ागाढ़की दूरी केवल २२ मील है। काकड़ागाढ़ पहुँचते ही मोटरका मार्ग भी समाप्त हो जाता है और केदारनाथके लिये यहाँसे पैदल मार्ग आरम्भ होता है। रुद्रप्रयागसे काकड़ागाढ़तकका मोटर-मार्ग वैसा ही ऊबड़-खाबड़ था जैसा इस क्षेत्रके अन्य मार्गोंका। कई जगह तो बहुत ही खराब—बहुत धीरे-धीरे सतर्कतासे चालक मोटर चलाता इस बाईस मीलके मार्गको पग-पग नापता-सा कोई दो-ढाई घण्टेमें काकड़ागाढ़ पहुँचा। मार्गका प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय था। काकड़ागाढ़ पहुँचनेके पूर्व रुद्रप्रयागसे ११ मील चल मार्गमें 'अगस्त मुनी' नामक स्थानपर मोटर रुकती है। कहते हैं, यहाँ अगस्त्य मुनिने तप किया था। अगस्त्य मुनिका यहाँ एक मन्दिर भी है। विषुवत् संक्रान्तिको इस स्थानपर एक बड़ा मेला लगता है। 'अगस्त मुनी'में डाकघर तथा जूनियर हाई स्कूल है। हमलोग अगस्त्य मुनिके मूर्तिदर्शनको उक्त मन्दिर भी गये। ऋषि अगस्त्यकी यह मूर्ति आकर्षक नहीं है। मन्दिरके दो भुजाओंवाले धातुके बाहरी हिस्सेपर दाहिनी ओर गवाक्षमें हर-गौरीकी एक सुन्दर मूर्ति है। मन्दिर बस्तीमें आबादीके भीतर बना है। स्थान अच्छा है। यह स्थान ३००० फुटकी ऊँचाईपर है। हिमालयके हिमानी शृंग यहाँसे दीखने लगते हैं और यद्यपि इन्हीं श्रेणियोंके नीचे केदारनाथ हैं तथापि जो शिखर दिखायी दिये उनके नीचे केदारनाथ नहीं हैं। ये शिखर हिमालयके चौखम्भा शिखरके नामसे प्रसिद्ध हैं। आजका हमारा मुकाम गुप्तकाशीमें था, जो काकड़ागाढ़से तीन मील है।

मोटरसे उतरते ही हमने अपने पाँव साधे और पदयात्रा आरम्भ की। काकड़ागाढ़के आगे कुछ दूरतक ही पैदल मार्ग हमें अच्छा मिला। यह इसलिये कि गुप्तकाशीतक मोटरका मार्ग बनाया जा रहा है; किंतु, आगे वही दुर्दशा, फिर भीषण चढ़ाई! काकड़ागाढ़को 'कुण्डचट्टी' भी कहते हैं। यहाँसे एक मील आगेसे पहाड़के ऊपर शोणितपुरको सड़क जाती है, जिसका फासला तीन मील है। शोणितपुर एक महत्त्वपूर्ण स्थान है—इसलिये पाठकोंकी जानकारीके लिये शोणितपुरका विवरण यहाँ देना उचित होगा। कहते हैं शोणितपुरमें बाणासुरके गढ़की निशानी तथा बाणासुर, अनिरुद्ध और पञ्चमुखी महादेवकी मूर्तियाँ हैं।

कथा है, राजा बलिका पुत्र बाणासुर पिताके रसातल जानेके उपरान्त पृथ्वीमें शोणितपुरकी रचना कर दानवोंके साथ रहने लगा।

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध ६२वें अध्यायमें कथा आयी है कि बलिके सौ पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठ पुत्र बाणासुर शोणित-पुरमें राज्य करता था। शिवजी उसकी ताण्डवगतिके नृत्यसे प्रसन्न हो उसके इच्छानुसार अपने कुलसमेत उसके घरमें उपस्थित हुए। एक बार परम पराक्रमी बाणासुरने शिवजीसे कहा कि आपके अतिरिक्त मुझसे युद्ध करनेवाला कोई नहीं है और युद्धके लिये मेरी भुजाएँ खुजलाती हैं, इसलिये कृपा करके आप मुझसे युद्ध कीजिये। शिवजी बड़े क्रुद्ध हुए और बोले 'मेरे समान बलवान्से जब तेरा युद्ध होगा, तब तेरा गर्व चूर हो जायगा।'

बाणासुरकी उषा नामक कन्या थी। स्वप्नमें अनिरुद्धके साथ उसका समागम हुआ। जागनेपर वह अपने प्रियतमके लिये व्याकुल हो गयी। बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखा बड़ी चित्रकार और योगविद्यामें निपुण थी। उषाने अपनी सखी चित्रलेखाको अपनी मनोव्यथा सुनायी। चित्रलेखा देव-मानव सभीके चित्र बना-बना उषाको दिखाने लगी। अन्तमें अनिरुद्धका चित्र देख उषा पहचान गयी और बोली मेरा मनमोहन चितचोर यही है। योगबलसे चित्रलेखा आकाशमार्गसे होकर द्वारिकापुरी पहुँची। उस समय अनिरुद्ध निद्रामग्न पलँगपर पड़े थे। चित्रलेखा योगबलसे अनिरुद्धको उसी अवस्थामें शोणितपुर ले आयी। उषा और अनिरुद्ध दोनों गुप्तभावसे एक साथ रहने लगे। कुछ समय पश्चात् बाणासुरको यह बात मालूम हुई और उसने क्रुद्ध हो अनिरुद्धसे युद्ध कर उसे नागपाशमें बाँध लिया।

कुछ काल बाद द्वारिकामें भगवान् श्रीकृष्णको उनके पौत्र अनिरुद्धके कारावासका समाचार नारदजीने जब दिया

तब श्रीकृष्ण एक बड़ी सेना लेकर शोणितपुर पहुँचे और नगरको घेर लिया। अपनी सेना लेकर बाणासुर भी पुर-बाहर हो रणोद्यत हो गया। उसकी सहायताके लिये महादेवजी भी अपनी चित्र-विचित्र सेना लेकर रणभूमिमें आ सुशोभित हुए। भयानक युद्ध होने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भण अस्त्र चलाया, जिसके कारण शिवजी जँभाई लेने लगे। तब श्रीकृष्णने बाणासुरकी सेनाका विनाश कर बाणासुरकी चार भुजाओंको छोड़ शेष सब काट डालीं। बाणासुरकी हार हुई और उसने श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम कर उषाको अनिरुद्धके अर्पितकर बिदा कर दिया।

शोणितपुरकी पश्चिम दिशामें बाणासुर दैत्यने अजेय वरदान पानेके लिये शिवजीका कठोर तप किया था, यहीं भगवान् शंकरने उसे अभय वर दिया था और तभीसे यहाँ 'बाणेश्वर महादेव' स्थित हो गये।

केदारनाथजीके अधिकतर पंडे शोणितपुरके ही रहनेवाले होते हैं।

गुप्तकाशी पहुँचनेके पूर्व भंडेरचौरा नामक स्थानपर हमें उत्तराखण्ड विद्यापीठके एक कार्यकर्ता मिले, जिनसे विद्यापीठका बहुत-सा हाल मालूम हुआ। बादमें श्रीगङ्गाधरजी मैठाणी मन्त्री, श्रीउत्तराखण्ड विद्यापीठने एक पत्र लिखकर गोविन्ददासको विद्यापीठ आनेका निमन्त्रण भी दिया; किंतु, समयाभाववश हमलोग कोई जा न सके। यह संस्था इस पहाड़ी क्षेत्रमें शिक्षणका उपयोगी कार्य कर रही है।

संध्याके कुछ पूर्व हम लगभग डेढ़ मीलकी दुर्गम चढ़ाई पारकर गुप्तकाशी पहुँचे। मार्गमें चारों ओर प्राकृतिक सौन्दर्यकी चाँदनी-सी छिटक रही थी। ४८५० फुटकी ऊँचाईपर रुद्रप्रयागसे २४ मील दूरीपर स्थित गुप्तकाशी केदारनाथ-मार्गका एक प्रमुख कस्बा है। पीछे छोड़े मुकामोंकी अपेक्षा ऊँचाईके बढ़ते ही यहाँ अब शीत भी बढ़ चली थी। गुप्तकाशीमें हमारे ठहरनेकी व्यवस्था हमारे पंडाजीने एक अच्छे स्थानपर की थी।

गुप्तकाशीमें दो प्राचीन मन्दिर हैं—एक चन्द्रशेखर महादेव और दूसरा अर्द्धनारीश्वर। यात्रियोंके आकर्षण और उनकी अर्चना-आराधनाकी दृष्टिसे बीच बस्तीमें महादेवका मन्दिर है, जिसमें विश्वनाथ नामक शिवलिङ्गकी स्थापना है। मन्दिरके सामने मणिकर्णिका नामक कुण्ड है। इस कुण्डमें दो निर्झरोंकी धाराएँ गोमुखसे गिरती हैं। एक धाराको गङ्गा, दूसरीको यमुना माना गया है। यहाँके लोगोंका कहना है कि ये धाराएँ यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीसे ही यहाँ आती हैं, इसलिये इन्हें यमुना और गङ्गा कहते हैं। यात्री इन दोनों धाराओंमें स्नान कर भगवान् विश्वनाथके दर्शन और दान-पुण्यादि कर यहाँ तीर्थयात्राका सुख उठाते हैं।

गुप्तकाशीमें शासकीय औद्योगिक माध्यमिक शाला, प्राथमिक शाला तथा तार-डाकघर, औषधालय और एक अच्छा-सा बाजार है। गुप्तकाशीसे रुद्रप्रयागतक टेलीफोन-सर्विस भी है, जिसके कारण यहाँसे भेजे जानेवाले तार रुद्रप्रयागतक टेलीफोनसे भेजे जाते हैं। जलवायु और तीर्थ दोनों ही दृष्टियोंसे गुप्तकाशी हमें उत्तराखण्डका एक उत्तम स्थान जान पड़ा। केदारखण्डमें इस स्थानका नाम 'गुह्य वाराणसी' है। यहाँसे मन्दाकिनीके बायें दूसरी ओर कुछ ऊपर सामने ऊखीमठ ग्राम दिखायी देता है, जो केदारनाथसे लौटकर चमोली होकर बदरीनाथ जानेवाले यात्रियोंके मार्गमें पड़ता है। ऊखीमठसे चमोली ३० मील और बद्रीनाथ ७० मील पड़ते हैं। दीपावलीसे अक्षयतृतीयातक केदारनाथके पट बंद होनेपर केदारनाथका पूजन यहीं होता है। यहाँ शिव-पार्वती, मान्धाता, अनिरुद्ध और उषाकी धातु-मूर्तियाँ हैं। कहते हैं पूर्वकालमें उषाका निवास-स्थान होनेके कारण इस स्थानका नाम उषामठ पड़ा। कालान्तरमें बिगड़कर वही ऊखीमठ हो गया। कुछ नवदुर्गाकी पुरानी पाषाण-प्रतिमाएँ हैं। ऊखीमठमें डाकघर, अस्पताल तथा पुलिस-चौकी भी है।

अपने गुप्तकाशी मुकाममें हमलोगोंने रातमें भोजन किया और मन्दिरमें विश्वनाथ भगवान्‌के दर्शनकर हम आरामतलब हो गये। रुद्रप्रयागमें एवं रुद्रप्रयाग छोड़नेके बाद मार्गमें मुकाम न होनेके कारण भोजन-व्यवस्था न हो सकी। अतः सारे दिन निराकण्ठ ही रहनेपर आज रात्रिमें ही हमें यहाँ भोजन मिला।

प्रातःकाल उठते ही हमलोगोंने मणिकर्णिका कुण्डमें स्नान किये, भगवान् विश्वनाथके मन्दिरमें दर्शनकर दान-पुण्यादिक कृत्योंसे निवृत्त हो हम अपनी आगेकी मंजिलपर चल पड़े।

गुप्तकाशीसे केदारनाथपुरी २४ मील रह जाती है। यहाँ भी हम अपनी पिछली यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी यात्राओंके सदृश इस क्षेत्रकी पावन सरिता मंदाकिनीके किनारे-किनारे केदारनाथ-मार्गपर चल रहे थे। हमने अभीतक यमुनोत्तरीका

भयानक मार्ग देखा था, उसके बाद गंगोत्तरी जाते हुए भी उत्तरकाशीके बाद हमें करीब-करीब यमुनोत्तरीके सदृश ही और कहीं-कहीं तो यमुनोत्तरीसे भी बढ़-चढ़कर मार्गकी बीहड़ताका सामना करना पड़ा था। केदारनाथका मार्ग यद्यपि हमें अच्छा बताया गया था, किंतु हमारा अनुमान यही था कि मार्गकी इस विपत्तिका सामना तो हमें यहाँ भी करना पड़ेगा; किंतु हमने देखा गुप्तकाशीके बाद जो मार्ग हमें मिला, वह आशातीत अच्छा था। मार्ग यद्यपि पगडंडीका ही है, पर बीहड़ बिल्कुल नहीं। काफी चौड़ाई और घुमावदार होनेके कारण चढ़ाव भी वैसा कष्टप्रद प्रतीत नहीं होता, जैसा यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरीका। फिर जहाँ कहीं मार्गके एक ओर गहरा खड्ड अथवा मोड़ आता है, वहाँ पत्थरकी मुडेर बनी हुई है जिससे मनमें उस प्रकारके भयका भी संचार नहीं होता जैसा गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी मार्गमें होता है। परंतु इस अच्छे मार्गके बनानेका श्रेय स्वतन्त्र भारतकी सरकारको नहीं है, जब भारत परतन्त्र था तो उस समय अंग्रेज सरकारने यह मार्ग बनवाया था। देशके स्वतन्त्र होनेके पश्चात् उत्तर-प्रदेशकी सरकारने कुछ बातें इसमें प्रशंसनीय की हैं। एक स्थानसे दूसरा स्थान कितनी दूर है, इसकी जानकारी तथा कौन स्थान समुद्र-सतहसे कितनी ऊँचाईपर है, यह जानकारी यहाँ पाषाण-शिलाओंपर लिख दी गयी है। कुछ चपटी शिलाओंपर कुछ अन्य हिदायतें और सूचनाएँ भी लिखी गयी हैं, इनमें कुछ तो कविताएँ हैं। जैसे—

हैजेका लगवालो टीका, इससे लाभ बड़ा है नीका।
बासी भोजन गन्दा पानी, बीमारीकी यही निशानी॥
मादक चीजें कभी न पीना, यदि चाहो तुम अधिक जीना।
कर बदन वस्त्रकी करो सफाई, यदि चाहो तुम देश भलाई॥

कुछ गद्यमें आवश्यक सूचनाएँ भी हैं। जैसे—'हैजेका टीका लगाना अनिवार्य है।' 'अगला प्राथमिक चिकित्सा-केन्द्र अमुक स्थान और दूरी पर है' 'केवल उबला या नलका लाल दवाई डाला हुआ पानी पीजिये।' 'कच्चे और अधिक पके फल मत खाइये।' 'यात्रा-कालमें सूर्योदयके पहले प्रस्थान कीजिये।' 'भोजनको मक्खियोंसे बचाइये।' 'रोगीको अस्पताल पहुँचाकर पुण्यलाभ कीजिये।' 'चट्टी-चौधरीसे लाल दवा मुफ्त लीजिये।' 'चट्टी-चौधरीसे आपको हर तरहकी सहायता मिलेगी।' अधिक अन्न उत्पादनके सम्बन्धमें भी कुछ कविताएँ और सूचनाएँ जगह-जगह लिखी हैं।

इन कविताओं और सूचनाओंका यहाँकी जनता और यात्रियोंपर काफी प्रभाव पड़ता है। पुराने विचारोंके लोग, जब ये रोग-निरोधक वैज्ञानिक प्रयोग प्रारम्भ हुए तो, विरोध करते थे। यही नहीं, अभी भी कुछ लोग इन टीकोंका मजाक उड़ाते हैं। विज्ञान पूर्ण नहीं है, इसे तो हम स्वीकार करते हैं और होना भी नहीं चाहिये। अपूर्ण मानवका प्रयत्न पूर्णताको प्राप्त करना ही है और इस प्रयत्नमें वह जुटा है, जिस दिन वह पूर्णता प्राप्त कर लेगा, दुनियाँकी परिभाषा ही बदल जायगी। परंतु, वह मजाक उड़ानेकी वस्तु तो कदापि नहीं। अथक श्रम और महान् व्ययसे जो अनुसंधान किये गये हैं, यदि हम उन्हींका आश्रय नहीं लेंगे तो हमारा अवलम्ब ही क्या रह जायगा? कुछ पानेके प्रयत्नमें हमें क्या-क्या खोना पड़ता है। क्या गँवाना पड़ता है, यहाँतक कि कभी-कभी अपने आपको खपा भी देना पड़ता है, उस बीजकी तरह जो एक विशाल वृक्षका आकार ग्रहण करता है। सर्वसाधारण इसकी सहज कल्पना नहीं करता। अस्तु, इस दृष्टिसे ये जनोपयोगी अनुसंधानों और प्रयोगोंकी कतिपय पढ़े-लिखे व्यक्तियोंद्वारा आलोचना और इनका मजाक हम एक अनुचित बात मानते हैं। ऐसी बातोंसे मनुष्यके अज्ञानताके घेरेमें पड़े रहनेकी प्रवृत्तिको बढ़ावा मिलता है, जो प्रवृत्ति अत्यन्त खेदजनक है। हमें यहाँके लोगोंसे मालूम हुआ कि हैजेके टीकेको अनिवार्य कर देनेसे जो हैजेकी बीमारी यहाँ यात्राकालमें अनेक स्थानोंपर भयंकर रूपसे अनेक बार फैल जाती थी, वह प्रायः समाप्त हो गयी है।

सरकारकी ओरसे यहाँ कुछ पक्के और कच्चे शौचालय और मूत्रालय भी बनाये गये हैं, जिनमें सफाईकी दृष्टिसे डी० डी० टी० के छिड़कनेकी अच्छी व्यवस्था है। केदारनाथके इस मार्गमें चिकित्साकी भी व्यवस्था की गयी है। ठहरनेके स्थान चट्टियोंके मकान भी बुरे नहीं हैं। यद्यपि इन मकानोंमें गंदगी अभी भी काफी है। फिर इनके रसोईघर, चौके तो बहुत ही गंदे हैं और नहाने आदिकी भी कोई व्यवस्था नहीं है। काली-कमलीवालोंकी इस मार्गकी धर्मशालाएँ गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी मार्गकी धर्मशालाओंसे अच्छी हैं। किंतु इनमें भी काफी सुधारकी आवश्यकता है। विशेषकर गंदगी दूर करनेकी, रसोईघर सुधरवाने और स्नानागार बनवानेकी। तो भी इस मार्गके और अपनी यात्राके पिछले दो धामोंके निरीक्षणसे यह ज्ञात हो जाता है कि जहाँ एक ओर यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीकी तरफ सरकारकी और सार्वजनिक ट्रस्टों अथवा दानी-मानी व्यक्तियोंकी उपेक्षा है, वहाँ दूसरी ओर केदारनाथ-पथपर काफी काम हुआ है और सुधारवादी प्रयत्न हो रहे हैं।

गुप्तकाशीसे केदारनाथकी ओर जैसे-जैसे आप बढ़ते

हैं, प्राकृतिक दृश्य अधिकाधिक मनोहर होता जाता है। आगे कुछ दूरतक तो चीड़का जंगल मिलता है, पर इसके बाद चीड़ या देवदारके सदृश सुन्दर वृक्ष दृष्टिगोचर नहीं होते। हाँ, बहुत ऊँचाईपर देवदारके वृक्षोंकी ही एक जातिके वृक्ष दिखते हैं। इन्हें 'चिलादी' कहते हैं। ये मैदानोंमें होनेवाले सुरोंके वृक्षोंके सदृश सीधे और उसी प्रकार नीचेसे ऊपर तक छोटी-छोटी टहनियों और पत्तोंवाले होते हैं, परंतु सुरोंके वृक्षोंसे कहीं अधिक ऊँचे, पर देवदारके बड़े वृक्षोंके सदृश ये फैले हुए नहीं होते। चीड़ और देवदारके सदृश सुन्दर वृक्षोंका इस मार्गपर जंगल न होते हुए भी वृक्षावली अत्यन्त सघन है। मार्गमें अनेक स्थलोंपर तो इस हरित सघन-वृक्षावलीकी कुञ्जें बन गयी हैं, जिनके कारण मार्गके इन स्थलोंपर सूर्यकी किरणोंतकका प्रकाश नहीं पहुँचता। फिर ये स्थल हिमालयकी शिखरावलीसे गिरते हुए अगणित जलप्रपातोंके कारण अत्यधिक सुन्दर हो गये हैं। मार्ग, यद्यपि जैसा कि ऊपर कहा गया है, मंदाकिनीके किनारे-किनारे ही गया है और मार्ग चलते मंदाकिनीके दर्शन होते रहते हैं, किंतु अनेक बार इस सघन वृक्षावलीके कारण मंदाकिनी दिखायी भी नहीं देतीं। इसके प्रवाहपर इन तरुओं-की छाया है। ऐसे स्थलोंपर केवल मंदाकिनीका मन्द-मन्द शब्द ही सुन पड़ता है और मंदाकिनीके दर्शन-सुखसे वञ्चित नेत्र जब प्राकृतिक दृश्योंका निरीक्षण करते तो इन दृश्योंका मनपर जो प्रभाव पड़ता, उसके कारण मंदाकिनीके रवसे पूरित हमारे कान और दृश्योंसे लुभित लोचन दोनों एक तन्मय स्थितिमें आकर मनको वह एकाग्रताकी सुखानुभूति कराते, जो मंदाकिनी और इन अरण्य-दृश्योंके दर्शनमें नहीं होती। वृक्षावलीके अतरिक्त गिरिशृंगोंपर अनेक प्रकारके पौधोंकी झाड़ियाँ हैं, जिनमें छोटा और बड़ा हंसराज तथा पतला बाँझ प्रमुख रूपसे दिखायी पड़ता है। यह हंसराज केवल गिरिशृंगोंपर उगा हो इतना ही नहीं, बाँझ नामक वृक्षोंकी पीडों और शाखाओंतकपर भी यह उगा है। इससे बाँझके कुरूप वृक्ष भी सुन्दर हो गये हैं। बाँझके इन वृक्षोंपर हंसराजके सिवा अनेक प्रकारकी कुछ ऐसी लताएँ चिपटी और लिपटी रहती हैं, जिन्हें जौंक कहते हैं और कुछ लताएँ इन वृक्षोंसे झूमकर चलती हुई पवनमें झूमती रहती हैं।

इस ओर हिमालयकी शिखरावलीके भी हमें कुछ बड़े सुन्दर-सुन्दर दृश्य दिखायी दिये। एक स्थानपर एकके बाद एक ऊँची होती हुई छः श्रेणियाँ हमें दिखायी भी दीं और इन श्रेणियोंके बाद इन श्रेणियोंके बीचमें हिमसे ढका हुआ एक शिखर। इन सात श्रेणियोंको देख हमें 'भूः भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्यं' ये सात लोक स्मरण हो आये। एकके अनन्तर उससे ऊपरका दूसरा लोक और अन्तमें हिमसे ढका हुआ श्वेत सत्यलोक। जब हम निर्निमेष दृष्टिसे इन गिरि-श्रेणियोंको देख रहे थे, उस समय एक और नयी घटना घटी। कुछ ही क्षणोंमें इन श्रेणियोंके बीचके स्थानमें मेघ आ गये। इन मेघोंसे ये श्रेणियाँ तो लुप्त हो गयीं, पर इनके ऊपरके 'चिलदी' के वृक्ष दिखते रहे। जान पड़ता, जैसे ये चिलदीके वृक्ष गिरिशृंगोंपर न उगकर मेघोंपर उगे हों। एक अन्य श्रेणीमें 'चिलदी'के ये वृक्ष बीच-बीचमें उगे हुए थे और ये घिरे थे अन्य छोटे-छोटे वृक्षोंसे। इन्हें देख गोविन्ददासको न्यूयार्क नगरका स्मरण हो आया। जहाँ, साठ-सत्तर और अस्सी-अस्सी मंजिलके कुछ मीनारनुमा मकान छोटे-छोटे कुछ अन्य घरोंसे घिरे हुए हैं। उन्होंने कहा "इस शिखरावलीको वे 'हिमालय प्रदेशका न्यूयार्क' नाम देंगे!" (क्रमशः)

भगवान् हर समय, हर जगह मेरे साथ रहते हैं

मुझे यह निश्चय हो गया है और मैं यह अनुभव करता हूँ कि भगवान् हर समय, हर जगह मेरे साथ रहते हैं। मैं कभी अकेला रहता ही नहीं। अवश्य ही कभी-कभी मैं भगवान्‌को देख नहीं पाता, वे मेरी आँखोंसे ओझल-से हो जाते हैं, पर उस समय भी मैं यह अनुभव करता हूँ कि वे मेरे साथ ही हैं। जहाँ यह अनुभूति मेरे हृदयमें आती है कि वहीं तुरंत मेरी आँखोंका पर्दा हट जाता है! इसीसे मैं सदा सर्वत्र निर्भय तथा निश्चिन्त रहता हूँ; क्योंकि उनके रहते ऐसा कोई कारण बन ही नहीं सकता, जिससे मुझे कभी किसी प्रकारसे भय या चिन्ता हो। कभी किसी बाहरी परिस्थितिको देखकर, न जाननेवाले लोग चाहे यह समझें कि मैं भय-चिन्तासे ग्रस्त हूँ। पर यह उनकी अपनी दृष्टि है। मेरी दृष्टिमें तो सारे भय तथा सारी चिन्ताओंका सदाके लिये नाश हो गया है; क्योंकि भगवान् हर समय, हर जगह मेरे साथ रहते हैं।

वैज्ञानिक संजीवनी (Vaccine Honey)

(लेखक—श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

[गताङ्क पृष्ठ १०११ से आगे]

मनुष्य २२००० वर्ष जियेगा

एक कीटाणुके रूपमें गर्भमें प्रवेश कर माताके रक्तके तत्त्वोंके संयोगसे बढ़ते हुए वह कीटाणु क्रमशः पिण्डका रूप धारण करता है और पूर्ण पिण्ड बनकर वह बाह्य संसारमें जन्म लेता है। जन्म लेते ही उस पिण्डमें विकासके साथ-साथ मृत्युकी रासायनिक प्रक्रिया भी आरम्भ हो जाती है। गर्भकालमें मृत्युकी यह क्रिया उतनी उग्र नहीं होती, जितनी कि जन्मके बाद; क्योंकि अब उसे बाहरसे रक्तके बदले दूध, जल, वायु आदिके रूपमें भोजन प्राप्त होने लगता है, जिसकी लम्बी पाचन-प्रणाली एवं रासायनिक क्रियासे उसे पुष्टि मिलनेके साथ-साथ उसमेंसे अनेक व्यर्थ रासायनिक विष भी शेष होकर निकलते हैं। अन्नका उबाला भूना और अनेक प्रकारके स्वादिष्ट मिश्रण होनेसे तो यह और भी विषम बन जाता है और मिश्रित विषके प्रसारसे मल-मूत्र-पसीनेसे शरीरमें मृत्युकी रासायनिक क्रिया और भी उग्र हो उठती है।

The ultimate cause of death is poisoning from waste products in human physiology and biology, bionosis in biophysiology.

मनुष्यकी पाचन-प्रणालीमें यदि इस विषमताका संचार न होने पाये और किसी बाह्य अथवा आन्तरिक विषमतासे रक्तमें भी विष-विकारका संचार न होने पाये, पाचन और रक्तसंचार-प्रणाली हमेशा शुद्ध सतेज बनी रहे तो मनुष्य कभी न मरे, वह अमर बना रहे।

संसारमें सूक्ष्म जीवाणु मरते नहीं पाये जाते। बंद और रुके हुए पानीके स्थलोंमें, जैसे, गड़हे, तालाब आदिके पानीमें ऐसे एककोषी जीवाणु पाये गये हैं जो कभी मरते नहीं। वे द्विभाजित, अर्थात् स्वयं एकके दो बनकर बढ़ते जीते रहते हैं। इसका नाम पारामेसिया (Paramecia) है। एक ऐसा जीवाणु साढ़े तेरह वर्षमें एकसे दो बनता हुआ नौ हजार पीढ़ियोंमें इतना विस्तृत परिवारवाला बन जाता है कि उसे देखनेके लिये मनुष्यको ढाई लाख वर्षकी आयु चाहिये।

सन् १९१२ में अमेरिकाकी 'राकफेलर शोध संस्था'के डॉक्टर अलेक्सिस केरलने एक मुर्गीके अजन्मे बच्चे (Chick embryo) के हृदयका एक टुकड़ा निकालकर सुरक्षित कई वर्षोंतक रक्खा और उसे नित्य साफ करते खूराक देते रहे, वह जिन्दा रहा, मरा या सड़ा-गला नहीं। अमरता सिद्ध करनेके पश्चात् उसे जिन्दा ही फेंक दिया गया, अन्यथा सैकड़ों वर्षोंतक उसे जीवित रक्खा जा सकता था।

मानव-शरीरका भी यही हाल है। यह शरीर एककोषी न होकर बहुकोषी, अगणित जीवकोषोंका सुसंगठित स्थूलरूप है। इस शरीरके प्रमुख किसी अङ्गके कुछ अथवा सभी जीवकोषोंपर आन्तरिक विकारसे अथवा बाह्य आघातसे, केवल एक अङ्गकी मृत्यु होनेसे सारा शरीर, सारा कारखाना बंद हो जाता है, यही मृत्यु है। मस्तिष्क, फेफड़े, हृदय, यकृत, मूत्रयन्त्र, ग्रंथियाँ जैसे प्रमुख अङ्गोंमें किसीके भी थककर बैठ जानेसे, विषाक्त होनेसे, आघातसे परस्पर सम्बन्धित सभी अङ्गोंकी मृत्यु हो जाती है। स्वयं जीते और समर्थ होते हुए भी वे बेकार, निर्जीव हो जाते हैं। जबरदस्ती मरना पड़ता है, अन्यथा कानूनसे वे अमर हैं। हरेक अङ्गकी आयु और सामर्थ्य अलग-अलग है। हड्डी करोड़ों वर्ष पहलेकी अब भी मिलती है।

आग सब कुछ भस्म कर देती है। आगमें विनाश है। यह आग मानव-शरीरमें, शरीरको चैतन्य बनाये रखनेके लिये मौजूद है, परंतु चैतन्य रखनेके साथ-साथ यह उसको भस्म भी करती रहती है। यह है उसका टेम्परेचर ९८.६० फ०। वैज्ञानिक कहते हैं कि यदि मानव-शरीरकी आग कुछ ठंडी हो जाय, आधी हो जाय, अर्थात् ४९.३० फ. कर दी जा सके तो मनुष्यकी आयु दो हजार वर्षतक बन सकती है। परंतु प्रकृतिने शीत और उष्ण दोनों जगहोंके निवासियोंका आन्तरिक तापक्रम एक-सा रक्खा है। इसे कौन कैसे कम करे और दीर्घायु पाये ?

किन्हीं-किन्हीं वैज्ञानिकोंने, रोगियोंकी चीरफाड़ करते समय हृदय-गति बंद हो जानेपर विशेष प्रयत्नों और कारीगरीसे हृदयको गतिमान करके उसे कुछ काल जीवित रक्खा है और वे आशा करते हैं कि ऐसे प्रयत्नोंसे आयु ११५ वर्षकी बनायी जा सकती है।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय, अमेरिकाके एक खोजी डॉक्टर हेनरी सिम्स कहते हैं कि मनुष्यमें दस वर्षकी आयुमें जो रोग-निरोधक क्षमता होती है, वैसी ही यदि आजीवन बनी रहे तो मनुष्य ८०० वर्ष जी सकता है और इस प्रकार ईमानदारी रखते हुए कोई-कोई २२००० (बाईस हजार) वर्षतक जी सकता है। परंतु मनुष्य अज्ञान और असंयमसे धीरे-धीरे आत्मघात करता हुआ, आत्मविषमयतासे रोगी, क्षीण होकर अल्पायुमें ही मर जाता है। इसका कारण है माता-पिताके विकार, जो आनुवंशिक पैतृकरूपमें जन्मसे ही संतानको रोग, अपंगता, क्षीणता-के रूपमें मिलते हैं और पश्चात् बहुत कुछ अपनी अज्ञानतासे किये हुए अपने ही पाप होते हैं। इन सब कारणोंसे आज पैदा हुए बच्चे तुरंत मर जाते हैं अथवा एक-दो दिन जीकर या कुछ महीने, कुछ वर्ष जीकर अधमरे, आधे जिन्दे रहकर मरते हैं। पूर्ण चेतन, सजीव कोई नहीं मिलता।

अब इन वैज्ञानिकोंकी इस स्वर्गीय अमरताकी कल्पनाका भण्डाफोड़, विषाक्त दवाइयोंके सेवनमें निहित हो जाता है। लोगोंकी आयु भले ही बढ़ जाय, वे बिस्तरपर अपंग बने रहकर हजार वर्ष भी जियें तो ऐसे जीनेसे क्या लाभ?

इससे तो अल्पायुमें ही मर जाना अच्छा। कहना न होगा, साक्षात् देखना चाहिये कि विज्ञान और उद्योगके विकाससे रासायनिक विषौषधों—संजीवनी साधनाओंके प्रचार-से कितना रोग बढ़ा है, कितनी अपंगता बढ़ी है, कितनी आयु बढ़ी है! रोग और अपंगता लिये हुए मनुष्य हजारों वर्षतक जिये तो ऐसा जीवन पृथ्वीपर केवल भारस्वरूप है।

प्रयोगशालामें जीवाणुको अमर सिद्ध कर देना एक बात है और स्वयं व्यवहारमें अमरता सिद्ध करना दूसरी बात है। वैज्ञानिक लोग अपने विषयमें स्वयं जो अमरता न सिद्ध कर सकें, स्वयं रोगी, क्षीण और अल्पायु होकर मर जाते हैं तो इनके वैज्ञानिक अमरताके सिद्धान्त और साधनसे हमें क्या लाभ? इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो वैज्ञानिक अपने ऊपर अपनी बातोंको सिद्ध नहीं कर सकते वे दुनियाको अपनी चतुराईसे बहकाकर स्वार्थ-साधन करते, यश कमाते हैं। इनका कितना और कैसे भरोसा किया जाय और इनकी वैज्ञानिकताकी सार्थकता क्या? ये वैज्ञानिक स्वयं असंयम करते, अनाप-शनाप खाते-पीते, रोगी होते, अल्पायुमें मर जाते हैं। डॉक्टरी अखबारोंमें मरनेवाले डाक्टरोंके नाम देखिये। उनके रोग और उनकी आयु, उनके व्यसन और इलाजका ज़िक्र नहीं किया जाता। अभी कुछ समय पहले इंग्लैंडके एक स्वास्थ्य-सम्बन्धी मासिकपत्रने समाचार उद्धृत किया था कि पोलियो-रोग-निरोधक टीका लेकर कुछ डॉक्टर और वकील उसके विषाक्त प्रभावसे मर गये। टीका लेनेके पहले वे भले-चंगे थे। स्वस्थ दशामें, रोगसे बचनेके लिये जो डरके मारे जहर अपने खूनमें घोल लें, ऐसे वैज्ञानिकों और डाक्टरों-की बुद्धिको और उसके परिणामको देखिये! इन्हें वैज्ञानिक कहा जाय अथवा अविवेकी! ये लोग जानते हैं कि संसारकी खेती-में अन्न बोकर अन्न, साग बोकर साग, फल-मेवोंके बीजसे फल उत्पन्न होता है और लोग उन्हें खाकर पुष्ट होते जीते हैं। विष खानेपर मौत होती है। परंतु रोगके इलाजके सम्बन्धमें इनकी मति उल्टी चलती है। इनका सिद्धान्त है कि जितना तेज जहर होगा, उतनी ही बढ़िया, रोगनाशक एवं रोधक दवा बनेगी। Our strongest poisons are our best remedies. इस वैज्ञानिक अज्ञानके कारण वे इसका प्रयोग मूर्ख जनतापर करके रोग दबाते, रूपान्तर करके नये रोग फैलाते, अपना पेट-परिवार पालनेके लिये धंधा करते हैं। यदि ये धूर्ततापूर्वक ऐसा करते हों तो इन्हें अपराधी कहा जा सकता है, परंतु ये स्वयं भी जब असंयम करके रोगी दशामें दवाके रूपमें विष खाते हैं, इंजेक्शनके रूपमें उसे अपने खूनमें घोलते हैं तो इनकी बुद्धिपर तरस आता है कि ये विज्ञानके नामपर कितने भ्रान्त हैं!

प्रयोगशालामें जीवाणुकी आयु बढ़ानेवाले वैज्ञानिक स्वयं अपनी आयु नहीं बढ़ा सकते। रूसमें वैज्ञानिकोंने स्टालिन-की आयु डेढ़ सौ वर्ष बनानेके प्रयोगमें कितने ही मनुष्योंको मार डाला और स्टालिन पौन सौ वर्ष भी मजेमें न जीने पाये। जब कि वे दीर्घजीवी वंशज थे। उनके पिता, चाचा, बाबा सौसे अधिककी आयुमें मरे थे। विचारकर साक्षात् देख लीजिये कि इस दवा-विज्ञानसे स्वास्थ्य और आयु घटती है या बढ़ती है।

दवाकी बची

बम्बईके गुजराती साप्ताहिक पत्र 'जामे जमशेद'ने अपने १२ जुलाई ५९ के अङ्कमें ह्यूस्टन, टेक्सास राज्य, अमेरिका-का एक समाचार छापा है कि वहाँ एक दम्पतिको चोरीके निमित्त किसी घरमें दीवाल-दरवाजा तोड़ने-खोलनेके अपराध-में दो वर्ष कैदकी सजा सुनायी गयी तो उनकी तीन महीनेकी लड़की मात्र घरमें बची, उसे सरकारी आज्ञासे अन्य व्यक्तिके

पास पालन-पोषणके लिये रक्खा गया। नये अभिभावकके पास रहनेसे लड़कीको बुखार आने लगा, सोते हुए किसी अज्ञात भयसे वह चमककर ऐंठ पड़ती थी, इसलिये उसे अफीमकी दवा दी जाने लगी; क्योंकि जब यह लड़की गर्भमें थी तब उसकी माँ नशा किया करती थी, अतएव संतान नशेबाज पैदा हुई और आजन्म नशेबाज रहेगी। जैसा बीज वैसी खेती। काँटा बोकर फूल उगानेकी यह बे-ज्ञानकी वैज्ञानिक खेती।

इससे स्पष्ट होता है कि आजकल माता-पिताओंके रोगोंपर दवा-सेवन, इंजेक्शन आदिका परिणाम उनकी संतानपर होकर जो अनेक रोग हो रहे हैं और बच्चोंको उनके इलाज तथा रोग-निरोधके नामसे जबरदस्ती, अनावश्यक टीके और इंजेक्शन जो दिये जा रहे हैं उनका परिणाम उनके स्वयं जीवनपर तथा आगे उनकी संतानपर कैसा होगा उसकी आज कल्पना नहीं हो सकती। आजका मानव कैसा है, उसकी भविष्यकी संतान कैसी होगी, वैज्ञानिक स्वयं न तो निश्चयपूर्वक कुछ जानते हैं, न बता सकते हैं। अधज्ञानी बे-ज्ञानी बेचारे!

वैज्ञानिकोंपर अविश्वास

जापानमें मित्रराष्ट्रोंद्वारा नागासाकी और हिरोशिमा शहरोंपर अणुबम विस्फोट करनेपर पिछला महायुद्ध बंद हुआ, परंतु अणुबम डाले बिना भी कई महीने पहले ही यह युद्ध बंद हो सकता था। इन बमोंके विस्फोटसे जनताके मानस और स्वास्थ्यपर क्या प्रभाव हुआ है इसकी जाँचके लिये विश्व-स्वास्थ्य-संघ (World Health Organization) द्वारा एक कमीशन बनाया गया था। जिसमें 'यूनाइटेडनेशन्स स्पेशलाइज्ड एजेंसीजमें सलाहकार और 'कौंसिल ऑफब्रिटिश एशोसिएशन फॉर एडवांसमेंट ऑफ साइन्स'के सदस्य श्रीरिची कालडरने लिखा है कि 'दुनियाके स्पष्ट विचारकोंका अब वैज्ञानिकोंकी करामातोंपरसे विश्वास उठता जा रहा है।' उन्होंने एक अखबारमें लिखा है, 'जाँच करनेपर हमें जो मालूम हुआ उससे हम बहुत बेचैन हो गये। दुनियाकी सभ्यता अभी एक अंडेकी परतसे ज्यादा मोटी नहीं है।'

Mr. Ritchie Calder, adviser to United Nations Specialized Agencies, and Member of British Association for Advancement of Science—"The general public no longer trusts the scientists."—"Our findings were profoundly disturbing. We found that the crust of civilization was no thinker than an eggshell. Confronted with the release of atomic energy and radio-activity people everywhere were huddling back in the dark days of their own emotions, covering like our primitive ancestors from the menace of elemental forces. In an age dominated by science, the ultimate direction of science with its incalculable powers for good and evil, was in the hands of people-statesmen, politicians, civil servants, and indeed, boards of directors in industry—whose education has been designed to deprive them of knowledge of science."

दुनियाके समझदार लोग अब वैज्ञानिकोंसे डरते हैं, उनका भरोसा छोड़ बैठे हैं; क्योंकि इनकी करामातें खतरनाक और घातक हैं। जनताको मालूम हो गया है कि सरकारी कार्यालयोंसे भी प्रतिमास जो विज्ञानके प्रति विश्वासका प्रचार किया जाता है वह सब बेशर्मीसे 'झूठ' हीका प्रचार है।

"Slowly but surely since the end of the second world war, the general public has gradually come to realize that they are being subjected to a spate of blatant propaganda pouring forth month by month from a shameless band of official reassurers."

मूषक-गणना आँकड़े

अमेरिकन शासन संविधानके लेखक, नेता और वैज्ञानिक श्रीबेन्जामिन फ्रेंकलिन (१७०६–१७९०) ने तीन प्रकारकी झूठ बतायी है—साधारण झूठ, बिल्कुल झूठ और अन्तिम अधम झूठ होती है—सरकारी आँकड़े। Lies, damn lies, and statistics.

सन् १९३७ में ब्रिटेनमें 'चूहा मारो सप्ताह' का आयोजन, वेल्सकी 'मेरी' नामकी एक किसान बहिनने रेडियोपर सुना था, जिसमें प्रवक्ताने बताया था कि 'ब्रिटेनमें

चार करोड़ पचास लाख चूहे हैं और प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह चूहोंको मारकर उनकी संख्या कम करे।'

'मेरी' शालामें पढ़ती थी, दूसरे दिन उसने रेडियो-समाचारकी चर्चा करते हुए अपनी शिक्षिकासे पूछा कि 'प्रवक्ता महोदयको चूहोंकी संख्या कैसे मालूम हुई ? हमारे घरमें कितने चूहे हैं, हम या हमारे पिता भी नहीं जानते, फिर प्रवक्ता साढ़े चार करोड़ चूहे किस आधारपर बताते हैं ?'

लन्दनके ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशनको एक पत्र भेजकर यह बात पूछी गयी। कुछ समय बाद बी०बी० सी० का जवाब आया कि 'हमें नहीं मालूम, प्रवक्तासे पूछकर हम लिखेंगे।' कुछ दिनों बाद उन्होंने प्रवक्ताका उत्तर भेजा, 'मैं स्वयं चूहोंकी संख्या नहीं जानता, किंतु एग्रिकल्चर बोर्डको लिखकर पूछ रहा हूँ।' इस बोर्डका भी उत्तर बादमें मिला—'हम भी नहीं जानते, हम नेचरल हिस्ट्री म्यूजियमको लिखकर पूछकर बतायेंगे।' कुछ समय बाद इस म्यूजियमका भी जवाब मिला कि—'हमें भी चूहोंकी संख्या नहीं मालूम, हम जिनेवा (इटली) के इण्टरनेशनल बोर्ड ऑफ एग्रिकल्चर एण्ड स्टेटिस्टिक्ससे इसका पता लगाकर आपको लिखेंगे।' कुछ सप्ताहोंमें इस बोर्डका भी जवाब आया कि—'अन्ताराष्ट्रिय समझौतेसे, राजकीय आँकड़े बनानेके हेतु यह तय हुआ है कि किसी देशकी जन-संख्याके बराबर ही चूहोंकी संख्या मानी जाय।' तबसे अबतक २२ वर्ष हो चुके हैं, अभी १६ सितम्बर १९५९ के 'एक्सप्रेस' अखबारमें ऐसी ही अन्धज्ञानी परम्पराकी एक आवश्यक सूचना न्यूयार्क, अमेरिकाके चूहोंके विषयमें छपी थी—'न्यूयार्कका प्रत्येक नागरिक यदि अपने घरोंको चूहोंसे मुक्त नहीं करेगा तो एक वर्ष कैदकी सजा मिलेगी। यह कानून अक्टूबरसे लागू हो जायगा। चूहोंकी बढ़तीको रोको। न्यूयार्कमें प्रति व्यक्ति पीछे एक चूहेकी औसत आबादी है। (There is one rat to everyNewyorker).

आजकल दुनियाकी प्रायः हरेक गवर्नमेंटमें सूचना और प्रचार-विभागका काम जोरोंसे चलता है। उपर्युक्त बहिन 'मेरी'के अनुसार मैंने भी भारतकी एक प्रान्तीय राजधानीमें रहकर वहाँके सचिवालयको एक पोस्टकार्ड लिखकर पूछा था कि 'उस राजधानीमें चलनेवाले हत्यागृहमें किन-किन प्रकारके कितने पशुओंका वध होता है, वार्षिक संख्या बतावें, और उनके शरीरकी विभिन्न ग्रन्थियों और बह जानेवाले रक्तका कहाँ क्या उपयोग होता है तथा किसी सर्वसाधारणको वह कहाँसे किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ?' कुछ समय बाद उत्तर आया कि 'मेरा पत्र अमुक विभागको भेज दिया गया है, वहाँसे आपको उत्तर मिलेगा।' पुनः कुछ सप्ताहों बाद अमुक अधिकारीका उत्तर आया कि 'मेरा पत्र तीसरे अमुक विभागको भेज दिया गया है।' इस प्रकार पाँच-छः महीनेतक मेरे पास लिफाफोंमें सभी विभागोंसे उसी प्रकार अनिश्चित उत्तर आते रहे, जैसे इंग्लैंडमें उक्त किसान बहिनको।

राजनीतिक दाँव-पेंच और सरकारी प्रचारके हथकंडे जापानके नागासाकी और हिरोशिमा शहरोंपर अणुबम डालकर वैज्ञानिक नीतिसे आजमाये गये, जिसका पूरा पता दुनियाको सच्चा-सच्चा नहीं मालूम हुआ। इसमें कोई राजनीतिक कारण न था, था केवल वैज्ञानिक दबाव, परंतु प्रचार करके दुनियासे कहा गया कि जापानकी उद्दण्डता और युद्धसे नित्य मरनेवालोंकी बढ़ती संख्या रोकनेके लिये जापानपर अणुबम डालना न्याय और आवश्यक था, परंतु बात दरअसल बिल्कुल उल्टी थी।

राजनीतिमें वैज्ञानिक भूमिका

जनवरी १९४५ में याल्टा कान्फ्रेंसमें जानेके दो दिन पूर्व अमेरिकन प्रेसीडेण्ट रूज़वेल्टके पास जापानकी ओरसे भेजे गये शान्ति-प्रस्ताव प्राप्त हुए, थे जिन्हें अगस्त ४५ में, सात महीने बाद, अणुबम-विस्फोटके बाद मंजूर किया गया। वे प्रस्ताव जापानके बादशाहने जनरल मेकार्थरके द्वारा भेजे थे और जिनको मान लेनेके लिये जनरल मेकार्थरने सिफ़ारिश भी की थी। परंतु रूज़वेल्टने उसे अलग पटककर कहा था 'मेकार्थर अच्छा सेनापति है; परंतु राजनीतिमें उसका दिमाग गरीब है।' इस विषयमें ऐसी फटकार सुनकर जापानके बादशाह और उनके सहयोगी 'युद्ध रोको' शान्ति-प्रस्तावको लेकर अनेक प्रयत्न करते रहे जिनका वर्णन अमेरिकन अधिकारी, नेवल इण्टेलिजेंस सर्विसके एडमिरल एलिस जाकरियासने अपनी पुस्तक 'सीक्रेट मिशन्स' में लिखा है—''प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्ट और ट्रूमैन दोनों ही भलीभाँति जापानद्वारा 'युद्ध बंद करनेके प्रस्ताव' को जानते थे कि जापान हर तरहकी शर्तोंको माननेको तैयार है। इसपर भी शान्ति-प्रस्तावपर कई महीनोंतक कोई विचार अथवा निश्चय

न देख जापानने २२ जुलाईको पुनः वैसा ही प्रस्ताव भेजा था, परंतु उसे भी दबाकर पड़ा रहने दिया गया और नागासाकी तथा हिरोशिमापर अणुबम ५-६ अगस्तको डालकर सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर देनेके बाद १० अगस्तको शान्तिप्रस्ताव मंजूर करनेकी घोषणा की गयी। ऐसा क्यों हुआ ? इसका राजनीतिक नहीं वैज्ञानिक कारण है।

जिस समय जापानने जनवरीमें प्रथम बार शान्ति-प्रस्ताव किया था उस समय अणुबम तैयार न था। वे लोग (वैज्ञानिक) अणुबमको तैयार कर उसका प्रयोग अनुभव लेनेके लिये अमुक समयका इन्तजार कर रहे थे कि इस बमसे कितनी गहराई-ऊँचाई, लम्बाई-चौड़ाईतक कैसा विनाश होगा। लड़ाई चलते रहनेके लिये महापुरुषोंने जो झूठे प्रचार किये थे, उसका रहस्य 'आब्जर्वर' के ६ सितम्बर १९५९ के अंकमें लार्ड एटलीकी कलमसे छपा है कि 'जापानी लोग अपनी उद्दण्ड एवं पागल राजभक्तिके कारण जी-जानसे लड़ रहे थे और जापानी फौजें दक्षिणपूर्व एशियामें दूर-दूर फैली हुई थीं, वे पीछे हटनेको तैयार न थे, उन्हें मरना अधिक पसंद था और उनसे लोहा लेनेमें हमारा बहुत समय लगता, खर्च होता और हमारे कई लाख सिपाही मरते। इसलिये जापानपर अणुबम डालनेकी सहमति ब्रिटेनकी ओरसे चर्चिलने दी थी। यदि उस समय मुझसे पूछा जाता तो मैं भी वैसा ही कहता।'

परंतु यह प्रचार कितना झूठा था जब कि जापानने छः महीने पहले ही, अणुबम तैयार न था तभी शान्ति-प्रस्ताव किया था और तबसे उस प्रस्तावको मंजूर करानेमें प्रयत्नशील अनेक उच्च अमेरिकन अधिकारियोंने जो कार्यवाही की उसके वर्णनमें एडमिरल ज़ाकरियासने अपने 'सिक्रेट मिशन्स' में लिखा है—

The most distinguished living American statesman at that time was well aware of the persistent Japanese peace offers and was aghast at the spectacle of the needless continuation of the bloody warfare in the Pacific. He had a conference with President Truman about May, and presented his protest. He found that President Truman was also well aware of the Japanese eagerness to surrender on the most humiliating terms. But Mr. Truman told his eminent visitor that he was new in office and felt himself helpless in the face of tremendous pressure of the Pentagon forces led by Secretary of War Stimson and especially General Marshall, to continue the hostilities to the bitter end. There was a rigorous and inflexible determination on the part of these men to continue the war until they could try out the atom bomb which was then near perfection. There was not the slightest military need for dropping the atom bomb to end the war at once. The official American Strategic Bombing Survey summarized the facts in 1946—'Japan would have surrendered even if the atomic bombs had not been dropped, even if Russia had not entered the war, even if no invasion of Japan had been planned or contemplated."

'आब्जर्वर'के २७-९-५९ के अंकमें केलिफोर्नियाके श्रीहैरिस-बार्न्सने लार्ड एटलीके ६ सितम्बरके कथनपर यह उत्तर दिया है।

अणुबमका विनाशक प्रभाव जाननेके लिये जापानके तीन लाख लोग मारे गये, अथाह सम्पत्ति नष्ट की गयी—यह है वैज्ञानिक खिलवाड़। इसीके लिये शान्तिप्रस्तावको छः महीनेतक दबा रक्खा गया ! और इस प्रयोगकी विशेषता यह हुई कि राजनीति अथवा विज्ञानसे सम्बन्ध या रुचि न रखनेवाले लोगोंने, चर्च ऑफ इंग्लैंडके एक पादरीने भी विशेष संस्कार आयोजनद्वारा पहले 'अणुबम लेकर उड़नेवाले जहाज, उसके चालक और बमको आशीर्वाद दिया था।' पार्लियामेंटमें इसकी कोई चर्चा नहीं की गयी थी और जब अणुबम तैयार हो गया था तो यह बम कहाँ डाला जाय, इस विषयमें डेढ़ सौ वैज्ञानिकोंसे 'मत' लिया गया था। आधेसे अधिकने कहा 'बसे हुए शहरपर', और हिरोशिमाको पसंद करके निशाना बनाया गया। नागासाकीपर डाला गया। बम तो दूसरे प्रकारका था जिसे अणुबमकी शक्तिसे तुलना करनेके लिये डाला गया था।

मन्द प्रलय

परंतु अब तो शान्तिकालमें, युद्ध और अणुबम डाले बिना ही, नित्य मौन-विनाशके साधन प्रस्तुत हो रहे हैं। अणुबमकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि राकेट आदि अग्निबाण और अणु कारखानोंसे सूक्ष्म और दूरसे प्रभावकारक विषैली वायु निकलती है वह वातावरणमें घुलकर प्राणियोंके श्वासमें जा रही है, बादलोंमें मिलकर पानी बनकर पृथ्वीमें सब अन्न साग-फल दूध आदिमें सम्मिश्रित होकर भोजन-पानीके साथ नयी बीमारियाँ बनाकर मन्द हत्या करेगी।

"More slowly but quite as efficiently the same result is being achieved through the fumes given off from atomic fission factories. Every wind that blows through such a factory, comes out radio-active. For the disruption of life for silent assassination the miasma from the power plants alone, given time, is amply sufficient. With more and more stations and factories coming into action, a steady poisoning of our atmosphere is already taking place...the sumtotal of radio active deu in the atmosphere must slowly increase until life, vegetable animal, including human can no longer exist on this planet."

अणुबमपर खर्च, प्रयास और प्रयोग किये बिना अब इस मन्द-हत्याकी क्रियासे धीरे-धीरे श्वास और भोजन-पानी विषाक्त हो जानेसे एक समय ऐसा आयेगा कि हमारी वैज्ञानिक मूर्खता और गोरखधन्धेसे पृथ्वीके चारों ओरका वातावरण इतना घना विषाक्त हो जायगा कि वनस्पति और कोई प्राणी शेष न रह जायगा। जनतासे कर-रूपमें लिया गया अथाह धन, जनताद्वारा चुनी-बनायी जनतन्त्र सरकार युद्धके भयानक विनाशक अस्त्र-शस्त्र और रोग-निरोध, रोगनाश और स्वास्थ्यरक्षाके नामपर रक्त-मवादमिश्रित विषका निर्माण-संचार जनताके शरीरमें करनेके लिये खर्च कर रही है, हम अपनी ही सरकारपर विश्वास करके क्या परिणाम पाते हैं? उनके इस असत्य वैज्ञानिक प्रचारमें कितना धोखा है। हिरोशिमा और नागासाकीपर बम प्रहार होनेके पहले एक ईमानदार अंग्रेज पत्रकार जेम्स कामराने, सत्य जो स्पष्ट समाचार भेजा करता था, उसने तब लिखा था— "The most sacred men in the world today are atom-splitiers."

अणुविस्फोटसे जो महाविनाश हुआ और उसके बाद वातावरण कितना जहरीला हो गया, प्रकृतिमें कैसी उथल-पुथल प्रतिक्रिया कैसी हुई, विचित्र पीड़ायुक्त बीमारियाँ फैलीं, इन सबकी कल्पना वैज्ञानिकोंको पहले नहीं थी। वे अपनी भयानक करतूतोंका परिणाम देखकर भविष्य कल्पनासे स्वयं काँप उठते हैं कि अब आगे क्या होगा! परंतु हम तो मर जायँगे, बाल-बच्चे वह जमाना देखेंगे और हमें धिक्कारेंगे !!

(क्रमशः)

सत्सङ्ग और दुःसङ्ग

मिलता नहीं बिना हरिकी अनुकम्पाके पावन सत्सङ्ग।
जिससे 'भोगोंमें सुख है' इस विषम भ्रान्तिका होता भङ्ग॥
हो जाता तमाम इह-परके भोगोंसे तत्काल विराग।
हो जाता प्रभु-पद-पद्मोंमें सुदृढ़ और अनन्य अनुराग॥
जिससे भोगोंमें सुख दिखता बढ़ती मनमें विषयासक्ति।
मोहजनित बढ़ती जाती आराम-नाममें ही अनुरक्ति॥
हो चाहे 'सत्सङ्ग' नाम, पर है वह निश्चय ही 'दुस्सङ्ग'।
जिससे चढ़ जाता जीवनपर दोषमयी मायाका रङ्ग॥

श्रीपुरी धाम

(लेखक—आचार्य श्रीजगन्नाथप्रसादजी गुप्त एम्० ए०, बी० टी०)

आधुनिक पुरीक्षेत्र प्राचीनकालमें पुरुषोत्तमक्षेत्र, जगन्नाथक्षेत्र और श्रीक्षेत्र नामसे परिचित था। आधुनिक कालकी पुरीके पाँच कोसकी गिर्दमें पुरुषोत्तमक्षेत्र था। १५० वर्षपूर्व जगन्नाथ-मन्दिर और गुंडिचावाडीके बीच बाँकीमोहाड़ नदी प्रवाहित थी। पहले नदीके एक किनारे एक रथ और दूसरे किनारे दूसरा रथ, रथयात्रामें निकलता था। यही बाँकीमोहाड़ नदी चक्रनारायण-मन्दिरके पास समुद्रमें संगम करती है। ब्रह्मपुराणमें इसका विस्तार दस योजन लम्बा, पाँच योजन चौड़ा बताया है—

'दशयोजनविस्तीर्णं पंचयोजनमायतम्।
नानाश्चर्यसमायुक्तं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥
(४४ अ०)

इसी क्षेत्रमें नीलगिरि पर्वत विराजमान था, जिसपर जगन्नाथ-मन्दिर निर्मित है। इसी पर्वतके पास नाना प्रकारके वृक्षोंका जंगल था। इसी पर्वतपर एक बड़ा कल्पवृक्ष था। इस वृक्षके पश्चिममें रोहिणीकुण्ड था, जिसमें स्फटिककी सीढ़ी थी। इस कुण्डके पूर्वमें नीलमणि भगवान् वासुदेवकी मूर्ति थी। इस पर्वतके पश्चिममें सबर लोगोंका आश्रम था। यह क्षेत्र चार धामका अन्यतम प्रधान क्षेत्र स्वयं भगवान् विष्णुका वपुस्वरूप माना गया है। दारुरूपी जगन्नाथका यह क्षेत्र परम पवित्र है। यह पुण्यतम स्थान है। इस क्षेत्रमें जो वास करता है उसका जीवन सफल है। यहाँकी दारुमूर्ति शास्त्रसम्मत है। स्वयं भगवान् निज इच्छासे स्वयं गठन करके आविर्भूत हुए हैं। यह क्षेत्र अन्य क्षेत्रोंसे अति प्रिय है।

यह सर्ववादी सम्मत है कि जगन्नाथजीके आदिप्रतिष्ठाता श्रीइन्द्रद्युम्न राजा हैं। ये अवन्ति नगरमें राज्य करते थे। ये परम भक्त थे। किसीने इनको वैश्य भी लिखा है जो विवादग्रस्त है। इन्द्रद्युम्नने ही दारुमूर्ति बनवायी थी। वर्त्तमान मन्दिर उन्हींके द्वारा निर्मित हुआ है। ये राजा कलियुगके आदिमें हुए हैं। यह बात इतिहासद्वारा भी प्रतिपादित है। मादलापाँजीसे सिद्ध होता है कि अन्य राजाओंने मूर्तियोंकी केवल पुनः प्रतिष्ठा ही करवायी है।

उत्कलमें बौद्ध लोगोंका बहुत दूरतक राज्य रहा, किंतु बौद्धोंका प्रभाव इस मन्दिरपर नहीं पड़ सका। मध्यप्रदेशमें राजिवलोचन और शिवरीनारायण, शिवपुरी स्थानोंमें सबर-लोगोंका राज्य इन्द्रद्युम्नके समयमें था। अतएक इनका भी धार्मिक महत्त्व है।

पुरुषोत्तमक्षेत्रमें भगवान् श्रीजगन्नाथजीके आविर्भावके पहिले नीलमाधव ही प्रधान देवता माने जाते थे। सृष्टिके आदिकालसे नारायणकी आराधना इस क्षेत्रमें होती आयी है। जगन्नाथजीके आविर्भावका वर्णन कई संस्कृत ग्रन्थोंमें मिलता है, जिनमें ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण मुख्य हैं। उड़िया ग्रन्थोंमें भी यही वर्णन मिलता है, जिनमें सारलादासका महाभारत उल्लेखनीय है। उड़िया कवियोंने जनश्रुतिको ही लिपिबद्ध किया है। जगन्नाथजीके आविर्भावका वर्णन इस प्रकार है—राजा इन्द्रद्युम्न अवन्ति नगरमें रहते थे। वे वैष्णव तथा शास्त्रकोविद थे। उन्होंने स्वप्नमें नीलमाधवके दर्शन किये और उन्हें यह आभास मिला कि उनके लिये पुरीमें एक विशाल मन्दिर बनवा दो तथा उन्होंने यह भी स्वप्नमें सुना कि शिवरीनारायणमें जो नीलमाधवकी मूर्ति है, उसे वहाँसे ले जाकर पुरीके नये मन्दिरमें पधराओ; क्योंकि उस मन्दिरमें यह एक अनुचित बात है कि नीलमाधवके दर्शन सिवा सबर राजाके और कोई नहीं कर सकता। राजाने एक सभामें अपने विचार प्रकट किये। मन्त्रणाके पश्चात् उन्होंने अपने मन्त्री विद्यापतिको यह कार्य सौंपा।

विद्यापतिने शिवरीनारायणमें जाकर सब रहस्य देखा। जिस मन्दिरमें नीलमाधवकी स्फटिकमणिकी मूर्ति थी, उसके दरवाजेपर एक विद्युन्मय यन्त्र था और दो पत्थरके सिंह थे जो उस व्यक्तिपर प्रहार करते थे जो एक मुँदरी धारण किये नहीं जाता था। वह मुँदरी सबर राजा अपने पास रखते थे और किसीको भी नहीं देते थे। इस प्रकार नीलमाधवका दर्शन कोई नहीं कर सकता था। वरं अज्ञात व्यक्तियोंकी उन शेरोंके द्वारा हत्या हो जाती थी। विद्यापति अपनी कुशाग्र बुद्धिके द्वारा नीलमाधवका दर्शन करनेमें सफल हुए और पश्चात् वे नीलमाधवकी मूर्तिको वहाँसे हटाकर उज्जैनमें ले आये। फिर राजा इन्द्रद्युम्नने नीलमाधवकी मूर्ति पधरानेके लिये पुरीमें

एक विशाल मन्दिर बनवाया, जो ९० हाथ ऊँचा था। इस मन्दिरमें नीलमाधवकी मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी।

जब नीलमाधवके दर्शनसे पापियोंको मुक्ति मिलने लगी, तब यमराजको चिन्ता हुई कि उनका लोक शून्य हो जायगा। तब उन्होंने भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की कि आप मेरी रक्षा कीजिये। भगवान् विष्णुने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और वचन दिया कि अब नीलमाधव लुप्त हो जायँगे। तत्पश्चात् समुद्रमें ऐसा ज्वारभाटा आया कि नीलमाधवका मन्दिर बालूसे ढक गया और नीलमाधवकी मूर्ति अदृश्य हो गयी। लोगोंको मन्दिरका पता भी नहीं चला।

इन्द्रद्युम्नको जब नीलमाधव और मन्दिरके गुप्त होनेका समाचार मिला, तब उन्हें और उनकी रानी गुंडिचा देवीको बहुत शोक हुआ। उन्होंने नीलमाधवके पुनः दर्शन पानेके लिये एक हजार अश्वमेध यज्ञ किये और रानीने कठोर व्रत किये। जब राजाके १००० अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हो चुके, तब आकाशवाणी हुई कि 'राजा! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। यद्यपि तुमको नीलमाधवका दर्शन अब हो नहीं सकता, किंतु स्वयं भगवान् दारुरूपसे अपनी प्रतिमाका गठन करेंगे और चतुर्धा मूर्तियोंका दर्शन तुमको होगा। वही भगवान् साक्षात्‌रूपसे माने जायँ। समुद्रमें जो वृक्ष दिख रहा है, वह श्रीकृष्णभगवान्‌के पिंडसे उत्पन्न है। उसे लाकर पधरा दो। फिर भगवान् एक वृद्धके रूपमें आयेंगे और एक बंद कमरेमें मूर्तियोंका निर्माण करेंगे। बीस दिनोंतक कमरा बंद रखना। कोई भी गठनकी ध्वनि सुन न सके। इन मूर्तियोंके दर्शनसे सबका कल्याण होगा।'

देववाणी सुननेके पश्चात् राजा इन्द्रद्युम्नने उस लकड़ीको समुद्रसे मँगवाया। एक वृद्ध विश्वकर्मा आये। उन्होंने एक बंद कमरेमें प्रवेश कर मूर्तियोंका गठन आरम्भ किया। और कहा बीस दिनोंतक कमरा बंद रखना। पंद्रह दिनोंतक किसीको मूर्ति-गठनकी कोई भी आवाज सुनायी नहीं दी। भीतर उन वृद्ध महात्माके रहनेपर भी कोई भी ध्वनि कर्णगोचर नहीं हुई; तब पहरेदारोंको संदेह हुआ कि वृद्ध जीवित नहीं हैं नहीं तो, बिना आहटके पंद्रह दिनतक वे कैसे जीवित रहे होंगे। उन्होंने जाकर रानी गुंडिचादेवीको यह समाचार सुनाया, तब उन्होंने विचार किया कि उनके महलमें कोई हत्या न हो जाय। अतः उन्होंने उस स्थलपर जाकर निरीक्षण किया तो उन्हें भी कोई आहट नहीं मिली। यद्यपि कमरा खोलनेकी बीस दिनोंकी अवधि पूरी नहीं हुई थी, तब भी हत्याके भयसे उन्होंने कमरा खोलनेकी आज्ञा दे दी।

कमरा खोला गया। वहाँ चार अपूर्ण मूर्तियोंके दर्शन हुए। वृद्ध विश्वकर्मा नहीं दिखायी दिये। ये चार अधूरी मूर्तियाँ श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलभद्रजी, श्रीसहोद्रा (सुभद्रा) देवी और सुदर्शन चक्रकी थी। रानी और राजाको बड़ा विस्मय हुआ परंतु उन्होंने स्वयं भगवान्‌का प्रादुर्भाव देखनेके कारण अपनेको कृतार्थ ही माना। इस प्रकार ये चारों मूर्तियाँ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी ही साक्षात् आभा हैं।

नीलमाधवका मन्दिर, जिसको समुद्रने बालूसे ढक दिया था, बहुत दिनोंतक अदृश्य रहा। एक दिन उत्कल (ओड़ीसा) के राजा गालमाधव शिकारके लिये पुरीक्षेत्रके जंगलमें भ्रमण कर रहे थे। अकस्मात् उनके घोड़ेकी टापमें चोट आ गयी। राजाने उतरकर देखा तो मालूम हुआ कि पृथ्वीमें एक कलश गड़ा हुआ है। उसीसे घोड़ेकी टापमें चोट आयी थी। राजाने उसको खुदवानेकी आज्ञा दी। तब राजा इन्द्रद्युम्नद्वारा विनिर्मित मन्दिर पूरा निकल आया।

राजा इन्द्रद्युम्नने चारों दारुमूर्तियोंको गुंडिचा रानीके महलमें लाकर इसी मन्दिरमें पधराया। तबसे यह मन्दिर एक प्रसिद्ध धाम हो गया। भगवान्‌का दारुरूप शरीर उनकी लीला मात्र है। यह क्षेत्र स्वयं विष्णु भगवान्‌का आलय है और ये मूर्तियाँ साक्षात् विष्णुद्वारा ही संस्थापित हैं। इन गोपनीय दारुमूर्तियोंके सम्बन्धमें तर्क करना निषिद्ध है। जैसी जिसकी भावना रहती है, उसको वैसा ही फल मिलता है। चतुर्धा-मूर्तिका तत्त्व यह है कि जगन्नाथ ही श्रीकृष्ण हैं। पुरीको द्वितीय द्वारका कहते हैं। नीलमाधव ही विष्णु हैं और उनके अन्तर्धानके बाद वे श्रीकृष्णरूपमें इस क्षेत्रमें बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शनके साथ आविर्भूत हुए। सुदर्शनचक्र जगन्नाथजीके हस्तमें है जो कि विष्णुका चतुर्थ स्वरूप है। इन मूर्तियोंमें जगन्नाथ-बलभद्रके दो हाथ हैं और उनमें पद्म तथा अँगुली नहीं हैं। सुभद्राके हाथ नहीं हैं। जगन्नाथ विष्णुरूप हैं और बलराम शिवरूप हैं। पुरुषोत्तम ही जगन्नाथ हैं।

चतुर्धा मूर्ति चार वेद-स्वरूप हैं। जगन्नाथजी ऋग्वेद, बलभद्र सामवेद, सुभद्रा यजुर्वेद और सुदर्शन अथर्ववेद हैं।

चतुर्धा मूर्तिका तत्त्व शरीरमें श्रवण, नयन, अधर, नासिकाका है। श्रवण बलभद्र, नयन जगन्नाथ, अधर सुभद्रा और नासिका सुदर्शन हैं।

एक कवि इनके तत्त्वोंको इस प्रकार अङ्कित करता है—आँखकी पुतलीका सफेद भाग बलभद्र हैं, उसके ऊपर काला भाग सुभद्राजी हैं, उसके अंदर जो पुतली है वही जगन्नाथजी हैं।

'श्रीं' बीज बलभद्रका, 'ह्रीं' बीज सुभद्राका और 'क्लीं' बीज जगन्नाथजीका है।

कर-चरणविहीन मूर्ति केवल सुभद्राकी है। तीनों मूर्तियोंके चरण नहीं हैं, आँखें चित्रमें हैं, प्रतिमामें नहीं हैं। नासा बतानेके लिये कुछ ऊँचा नासिकाका स्थान बना दिया है। नासिकामें छिद्र नहीं है। कर्ण प्रतिमा तथा चित्रमें भी नहीं हैं। हाथके आकार भी खण्डित हैं।

ज्येष्ठ पूर्णिमासे आषाढ़ अमावस्यातक भगवान् मौसीके घरमें रहते हैं। तब मन्दिर बंद रहता है।

इस क्षेत्रमें शिव और विष्णु दोनोंका पूजन और मन्दिर आदिकालसे है।

बलरामको शिवरूप माना है। स्कन्दपुराणमें सुभद्राको भद्रकालीका रूप बताया है।

पञ्चदेवताकी उपासनाका समन्वय इसी मन्दिरमें पाया जाता है।

इन्द्रद्युम्नने जिस महातरुका महोदधिमें दर्शन किया था, उसकी स्थिति इसी संसार-प्रपञ्चवृक्षके समान है। उस महातरुका मूल जलमें तैरता हुआ ऊर्ध्वमूल और शाखा समुद्रमें निमग्न होनेके कारण अधःशाखा हुआ है। गीतामें जिस प्रकार अश्वत्थ वृक्षका वर्णन दिया है। इन्द्रद्युम्नने उसी प्रकारका वृक्ष देखा था।

महाप्रसाद

जगन्नाथजीके मन्दिरमें भगवान्‌के भोगको बादमें विमलाको दिखाया जाता है। तब वह महाप्रसाद कहलाता है। पहले पुरुषोत्तमक्षेत्रके केवल १० मीलकी गिर्दमें महाप्रसाद माना जाता था। वर्तमानमें ऐसा नहीं मानते। भारतके सभी स्थानोंमें महाप्रसादका प्रभाव है। जगन्नाथजीका भोग महाप्रसादके रूपमें प्रचलित है। तीनों मूर्तियोंमेंसे किसी एक भगवान्‌को भोग लगानेसे महाप्रसाद नहीं होता। तीनों मूर्तियोंको एक साथ भोग लगाकर बादमें विमलाको भोग लगाकर जो प्रसाद होता है, वही महाप्रसाद कहलाता है।

रथयात्रा

हिंदुओंका पुरीकी रथयात्रा एक प्रधान उत्सव है। यह भारतमें क्या, पृथ्वीमें अद्वितीय है। वैदिक ग्रन्थोंमें रथयात्राका उल्लेख है। रथयात्रा बहुत प्राचीनकालसे है। सूर्यका रथ विख्यात है। रामायण-महाभारतमें रथोंका वर्णन है। श्रीकृष्णका नंदीघोष, सुभद्राका देवदलन, बलरामका तालध्वज रथ है।

पुरीकी रथयात्रा ९ दिनकी होती है। प्रधान मन्दिरसे तीनों मूर्तियोंको तीन रथोंपर गुंडिचाके घर ले जाते हैं। गुंडिचा देवीका मन्दिर प्रधान मन्दिरसे १½ मील दूर है। इन्द्रद्युम्नने इसी स्थानमें अश्वमेध यज्ञकी वेदी तैयार की थी। यहीं इन मूर्तियोंका आविर्भाव हुआ था। आषाढ़ शुक्ल २ को यह यात्रा होती है।

इस मन्दिरकी परिक्रमामें बहुतसे अन्य मन्दिर हैं। जगमोहनसे लगा नाट्यमन्दिर है। भोग-मण्डप दर्शनीय है। सिंहद्वार मुख्य द्वार है। आनन्दबाजार, स्नानवेदी, चाहनी-मण्डप, रसोईघर आदि अनेक स्थान मन्दिरके परकोटाके भीतर दर्शनीय हैं।

इस क्षेत्रके पञ्चतीर्थ विख्यात हैं—(१) मार्कण्डेयकुण्ड, (२) अक्षयवट, (३) गरुड़, (४) उग्रसेनदर्शन और सागरदर्शन, (५) इन्द्रद्युम्नस्नान और नृसिंहदर्शन। यहाँ अन्य बहुतसे तीर्थ हैं। इस क्षेत्रका वर्णन मैंने बहुत संक्षेपसे किया है। इस वर्णनसे मेरा उद्देश्य इस क्षेत्रका प्रभाव बतानेका है। भक्तिमें भगवान् कहाँ प्रकट नहीं होते। भगवान्‌ने यहाँ स्वयं प्रादुर्भूत होकर गुंडिचा देवीकी भक्तिकी महिमा बतलायी है। इसी स्थानमें भगवान्‌की आभा प्राप्त होती है। मनुष्य इनके दर्शनसे निष्पाप होकर दिव्यधामके अधिकारी होते हैं। यह क्षेत्र धन्य है। धन्य हैं वे जो इस क्षेत्रकी यात्रा कर कृतार्थ होते हैं।

महाप्रसादसे दुःख-नाश

मनको वश कर, रहो नित, राग-द्वेष-विहीन।
विषयोंमें विचरो उचित, होओ कभी न लीन॥
यों भगवत्-सेवा करो, पाओ महाप्रसाद।
सब दुःखोंका अन्त हो, मिटें सभी अवसाद॥

मानवताके लिये मानवधर्म आवश्यक

इस समय एक ओर सर्वत्र उन्नति, प्रगति तथा विकास हो रहे हैं, नयी-नयी योजनाएँ बन रही हैं। दूसरी ओर घोर नैतिक पतन या सर्वनाश हो रहा है। मनुष्य इतना अधिक विषयासक्त हुआ जा रहा है कि वह किसी भी बुरे-से-बुरे कामके करनेमें नहीं हिचकता और किसी भी प्रकार अपने इच्छित विषयको प्राप्त करके सुखी बनना चाहता है। इसमें वह परिणाममें सफल तो होगा ही नहीं, परंतु उसकी पाप-प्रवृत्ति उसे अनवरत नीचे गिराती रहेगी। अत्यन्त विषयासक्त मनुष्यकी बुद्धि मारी जाती है और वह स्वयं ही अपने सर्वनाशको निमन्त्रण देकर बुला लेता है। अपने ही हाथों अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारता है, अपने ही हाथों अपने जल मरनेके लिये आग भड़काता है और अपने ही हाथों अपने कूद पड़नेके लिये गहरा गड्ढा खोदता है। घोर विषयासक्तिमें यह स्वाभाविक ही है। फिर आज तो दुनियामें सभी ओर विषयभोगोंकी ही महत्ताका प्रसार हो रहा है। सारा विवेक, सारी बुद्धि, सारा विज्ञान इस भौतिक विषयोन्नतिमें ही लगा है। इसलिये आज मानवका धर्मसे, अध्यात्मसे, भगवान्‌से नाता टूटा जा रहा है। वह परलोक तथा कर्मफलको न मानकर पापको पाप नहीं मानता, अपराधको अपराध नहीं समझता। अपनी कामनापूर्तिके लिये लोभ और क्रोधके वशमें होकर बुरे-से-बुरा काम करनेपर उतारू हो रहा है। आजका बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, अनाचार, असदाचार, दुराचार, अत्याचार, व्यभिचार, वैराचार, स्वैराचार आदि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अभी हालमें उत्तरप्रदेशमें सरकारी सूत्रोंके अनुसार 'गतवर्षके अंदर अपराधोंमें ७० प्रतिशत वृद्धि हुई बतायी गयी है। चोरी-राहजनीमें १०० प्रतिशत, डकैतियोंमें ७५ प्रतिशत, दंगा-फसादोंमें ८० प्रतिशत, हत्याओंमें २६ प्रतिशत और चोरीके अपराधोंमें ६६ प्रतिशत वृद्धि हुई है। और पुलिस अधिकारियोंको इस बातसे बड़ा आश्चर्य और परेशानी भी है कि बहुत-से पढ़े-लिखे लोग अपराध कर रहे हैं। हत्या, डकैती, तस्कर-व्यापार आदि मामलोंमें कई उच्च शिक्षित लोग पकड़े गये हैं। * सरकार परिवर्तित स्थिति और अपराधोंमें वृद्धिके कारण पुलिसफोर्स एक लाखतक बढ़ानेका विचार कर रही है।' †

सरकार जो कुछ भी प्रयत्न अपराध-निरोधके लिये करती है सो ठीक ही है। करना ही चाहिये। यहाँ सरकारकी ईमानदारीमें हमें कोई संदेह नहीं है। पर वास्तवमें पुलिसका फोर्स बढ़ानेसे अपराध घट जायँगे, ऐसी निश्चित आशा नहीं करनी चाहिये। कौन जानता है कि इससे अपराधोंमें अधिक फोर्स नहीं आ जायगा। असलमें विचारनेकी बात तो यह है कि यह अपराधोंमें मनुष्यकी प्रवृत्ति क्यों हो रही है, इसमें मूल कारण क्या है।

दण्डसे—भयसे एक बार कुछ कमी भले हो जाय, परंतु जबतक अपराधमें अपराधबुद्धि नहीं हो जाती, तबतक अपराधकी वृत्तिका नाश नहीं हो सकता। मनुष्य दुर्बल तथा अपूर्ण प्राणी है। उससे भूलें होती हैं, होंगी; उससे अपराध बनते हैं, बनेंगे। पर जबतक वह भूलको भूल समझता है, अपराधको अपराध मानता है, तबतक भूल या अपराध बननेके बाद उसे पश्चात्ताप होता है, उसे दुःख होता है और वह भविष्यमें ऐसा काम न करनेके लिये निश्चय करता है। परंतु जब भूल या अपराधमें भूल या अपराध-बुद्धि ही नहीं रहेगी, उसे वह एक कौशल या कर्मनिपुणता मानने लगेगा, सफलताका एक साधन मान लेगा, तब तो ययी-नयी उमंग तथा उत्साहके साथ उसे सफलतापूर्वक करना चाहेगा। कहीं कानूनकी

---

* यह तो उन अपराधोंकी संख्या है जो पुलिसकी डायरीमें दर्ज हो चुके हैं। अधिकांश अपराध तो पुलिसकी डायरीतक पहुँचते ही नहीं। इनके अतिरिक्त दफ्तरोंमें, कारखानोंमें, उद्योग-मन्दिरोंमें, सरकारी आफिसोंमें जो कानून-समर्थित या कानूनको धोखा देकर विविध अपराध होते हैं, उनकी तो कोई संख्या ही नहीं है।

† देखिये 'सैनिक' आगरा ता० ११ जून १९६१।

कोई अड़चन दिखायी देगी तो उससे बचनेका उपाय खोजेगा, अथवा न बच सकनेपर कुछ दण्ड भी सह लेगा, किंतु अपने काममें उसे कोई बुराई नहीं दिखायी देगी, उससे वह घृणा नहीं करेगा। कहनेके लिये आवश्यकतानुसार वह कहीं विरोध भी कर देगा, पर उस विरोधको वह स्वयं मनसे अपने लिये स्वीकार नहीं करेगा। अभी उस दिन उड़ीसाके भूतपूर्व मुख्य मन्त्री डा० श्रीहरेकृष्ण मेहताबने कहा है—

"आज समाजवादकी बड़ी-बड़ी बातें कही जा रही हैं, किंतु साथ-ही-साथ समाजमें सम्पत्तिका ममत्व और महत्त्व पहलेसे भी अधिक बढ़ गया है। किसी भी प्रकार धनी होना आज बुरा नहीं माना जाता। स्वयं कांग्रेसमें धनका मूल्य पहलेसे बढ़ गया है, प्रस्तावों और भाषणोंद्वारा जातिवाद, भाषावाद आदिकी निन्दा की जाती है, किंतु स्वयं कांग्रेसमें ये 'वाद' अधिक परिलक्षित हैं।"

वस्तुतः इसमें कांग्रेस या अन्य किसी भी संस्थाका कोई दोष नहीं है, न किसीपर आक्षेप ही करना चाहिये। कांग्रेसमें भी आजका ही मनुष्य है तथा दूसरी संस्थाओंमें या 'वादों' में भी आजका ही मनुष्य है। विचार करना है—मनुष्यकी वृत्तिपर। मनुष्य ही जब अत्यन्त विषयासक्त होकर भौतिक उन्नतिको ही उन्नति मानने लगा, तथा जब किसी भी मूल्यपर उसे प्राप्त करनेमें ही जीवनको सफल एवं गौरवान्वित समझने लगा, तब उससे अच्छे आचरणकी आशा कैसे की जा सकती है? अभी वह अपराधोंको अपराध न मानता हुआ भी, भाषामें अपराध तो कहता है, पर यों ही अपराध करता रहा तो आगे चलकर वह अपराधोंका 'अवश्य कर्तव्य' मानने लगेगा। यही तो आसुरी भाव है, जो तीन रूपोंमें आत्यन्तिक विषयासक्ति होनेपर मनुष्यमें उदय हो आता है। ये तीन रूप हैं—मोहनी—काम, आसुरी—लोभ और राक्षसी क्रोध। ये काम, क्रोध, लोभ ही नरकके त्रिविध द्वार हैं और आत्माका पतन करनेवाले हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥
(१६।२१)

'काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार हैं और आत्माका नाश करनेवाले हैं, अतः इनका त्याग करना चाहिये।'

पर आजका मोहावृत विषयासक्त मनुष्य तो इन्हीं तीनोंको जीवनका साधन मानने लगा है—इसीसे वह इन तीनोंकी प्रेरणासे कुछ भी करनेको प्रस्तुत है। भौतिक विज्ञान, कलाके लिये कला, मानसको अशुद्ध करनेवाला साहित्य, भोगबाहुल्यमें जीवनके उच्चस्तरकी कल्पना, शरीरके आरामकी प्रबलाकाङ्क्षा, अनावश्यक व्यय करनेकी प्रवृत्ति, विलासितामय जीवन, मिथ्या यशकी कामना, सिनेमा, धर्मनिरपेक्ष (या धर्मविरहित) शासन, किसी भी प्रकारसे धन कमा लेनेवालेका सम्मान, अभक्ष्य-भक्षण, प्रत्येक कार्यको आर्थिक दृष्टिसे सोचनेकी प्रवृत्ति, त्यागमें अनास्था, धर्म तथा परलोकमें अविश्वास, ईश्वरमें अश्रद्धा और आजकी आध्यात्मिकतारहित तथा धर्मबुद्धिशून्य भौतिक शिक्षा तथा सहशिक्षा आदि—इन्हीं सब कारणोंसे विषयासक्तिजनित पापाचारकी अनन्तकी ओर जाती हुई-सी वृद्धि हो रही है और विषयासक्तिजनित पापाचारसे उपर्युक्त सब दोषोंका उनकी असंख्य संतति-सहित संवर्धन हो रहा है। दोनों परस्पर एक दूसरेको बढ़ानेमें लगे हैं। यही कारण है कि आज देशके सभी क्षेत्रोंमें, सभी वर्गोंमें, सभी कार्योंमें दोष आ गया है। यही अपराधोंकी वृद्धिका, पतनका मूल कारण है। इस मूल कारणको मिटाये बिना न तो नये-नये कानूनोंसे अपराध मिटेंगे, न किसी विभागमें जन-संख्या बढ़ानेसे ही। कानून बनानेवाले तथा माननेवाले और अपराधोंको घटानेके हेतु सतर्क रहकर अपराधियोंको दण्ड दिलानेके लिये नियुक्त सभी लोग होंगे तो आजके पापको पाप न माननेवाले, अपराधको अपराध न समझनेवाले विषयासक्त मनुष्य ही न? जब उन्हींके मनमें अपराधमें अपराधबुद्धि नहीं होगी, तब उनके द्वारा अपराधोंका नाश कैसे होगा?

इसलिये आवश्यकता इस बातकी है कि आजका मनुष्य स्वयं पहले अपना सुधार करे। वह धर्मभावनाके द्वारा पापमें पापबुद्धि करनेवाला बने। अपराधको अपराध समझे। फिर चाहे वह कहीं किसी भी क्षेत्रमें रहे, उसके

द्वारा अपराध नहीं बनेगा । तभी वास्तविक समाज-सुधार होगा । समाज तो व्यक्तियोंके समूहका नाम है । जब व्यक्ति सुधर जायँगे, तब समाज आप ही सुधरेगा । अतः बढ़ते हुए अपराधोंको मिटानेके लिये धर्मभावोंके प्रचारकी परम आवश्यकता है ।

मानवको मानवता देनेवाले धर्म ही जब मानवमें नहीं रहेंगे, तब वह मानव कैसे रह जायगा ? वह तो मानवता-हीन पशु या पिशाच बन जायगा । अग्निमें दाहिका शक्ति न हो, सूर्यमें ताप तथा प्रकाश न हो तो वे जैसे अग्नि तथा सूर्य नहीं रह जाते, इसी प्रकार मानवधर्मशून्य मानव भी मानव नहीं रह जाता । धर्मका विरोध करके आजका मनुष्य मानवताका ही विरोध या मानवताकी ही हत्या करनेपर उतारू हो गया है ! यही सबसे अधिक दुःख तथा खतरेकी चीज है ।

मनु महाराजने मानवधर्मके दस लक्षण बतलाये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहम् ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

(मनुस्मृति)

'धैर्य अथवा उत्तम धारणा, क्षमा, मनका दमन, किसी प्रकार भी चोरी न करना, मन-शरीरकी शुद्धि, इन्द्रियोंका नियन्त्रण, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस मानवधर्मके लक्षण हैं * । मनुष्यमें इन धर्मोंका प्रकाश तथा विकास प्रचुरमात्रामें होगा, मनुष्य धर्मभीरु होगा, किसी भी लोभ, भय, कामनापूर्ति आदि हेतुसे अपने मानवधर्मका त्याग नहीं करेगा, तभी उसका मानव नाम सार्थक होगा, तभी अपराधोंका सर्वथा क्षय होगा और तभी मानव सच्चे अर्थमें सम्पत्तिवान् तथा सुखी होगा । यही वास्तविक प्रगति या विकासका स्वरूप है !

सच्ची बात तो यह है कि आजका मानव अपने मानव-विरोधी आचरणोंसे अपनेको पशुसे भी गया-बीता साबित कर रहा है । पशु कभी दम्भ नहीं कर सकता, वह अंदर जैसा होता है, बाहरसे भी वैसी ही चेष्टा करता है; पर मनुष्य है कुछ और, तथा बनता-दिखाता है कुछ और ही । वह भीतर वैर भरा रखता है और बाहर मित्र बनता है । भीतर भोगवासनाकी आग भड़कती है, बाहरसे विरक्ति तथा शान्तिका ढोंग रचता है । हृदय नीच स्वार्थसे भरा रहता है, बाहरसे बड़ा उदार तथा जनताके लिये त्याग करनेवाला देशका सेवक सजा रहता है । पशु भूख लगनेपर या क्रोध आनेपर सामने पड़े जीवोंकी हिंसा करता है, वह हिंसा-हत्याकी योजना नहीं बनाता, बिजलीकी मशीनोंके कसाईखाने नहीं बनाता, सर्वजीवसंहारक राक्षसी शस्त्रास्त्रका निर्माण करके वैज्ञानिक उन्नतिका अभिमान नहीं करता । पर मनुष्य आज क्या कर रहा है—यह सबके सामने है ।

पशु आहार-विहार-निद्रा-भय आदिमें प्रायः नियमा-नुकूल प्रकृतिसम्मत परिमित चेष्टा करता है, पर आजका मनुष्य मन-इन्द्रियोंके वशमें होकर गंदे भोगोंका गुलाम बनकर प्रकृति-विरुद्ध कर्म करता है और अपनेको स्वतन्त्र बताता है । इस प्रकार वह केवल मानवताको खो ही नहीं रहा है, पशुसे भी निकृष्टतर होता जा रहा है । तुलसीदासजी कहते हैं—

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले,
जड़ता बस ते न कहैं कछुवै ।
जिन्ह के मन राम सों नेह नहीं,
सो सही पशु पूँछ बिषान न द्वै ॥
जननी कत भार मुई दस मास,
भई किन बाँझ गई किन च्वै ।
जरि जाहु सो जीवन जानकिनाथ,
जिये जग में तुम्हरो बिनु ह्वै ॥

अतः मानवको सबसे पहले मानव-धर्मको ग्रहण करके सच्चे अर्थमें मानव बनना है । मनुष्यमें पशुकी अपेक्षा विशेष गुण एक धर्म ही है, जो उसके आचार-विचारको शुद्ध रखता है । मानव जबतक उस धर्मको अपनाकर उसका संरक्षण-संवर्धन करता हुआ देव-मानव नहीं बनना चाहेगा, तबतक किसी भी 'वाद'से और किसी भी कानूनसे उसकी अपराध-वृत्तिका नाश नहीं होगा । विकासके नामपर विनाश ही होता रहेगा ।

* धर्मके इन दस लक्षणोंको अच्छी तरह समझनेके लिये गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित 'मानवधर्म' नामक पुस्तिका पढ़नी चाहिये ।

तलाक-कानून

(लेखक—श्रीप्रभुनारायणसिंहजी)

देशकी हालतको सुधारनेके लिये रोज नये-नये कानूनोंका निर्माण होता जा रहा है। कानून बनानेवाले लोग वही होते हैं, जो शासन करते हैं। वे शासनके बलपर ही समाजकी सारी बुराइयोंको दूर करनेकी आशा करते हैं। उनका विश्वास है कि बिना आतङ्कके समाजका शोधन हो ही नहीं सकता। कानूनमें ऐसा नियम होता है जो यह निर्णय करता है कि अमुक प्रकारकी गलती करनेवालेको अमुक प्रकारका दण्ड दिया जाय। उस दण्डसे भयभीत होकर लोग अनुचित कार्य नहीं करेंगे। यही उद्देश्य कानून बनानेका है। गलती करनेवालेको अनेकों प्रकारके कष्ट दिये जाते हैं, पर समाजकी गलत प्रवृत्ति घटनेके बजाय बढ़ती ही जाती है, नित्य नये-नये भ्रष्टाचारोंकी उत्पत्ति होती जाती है, इस प्रकार कानून बनानेका उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है।

अपनी सरकारके जमानेमें भी बहुत-से नये-नये कानून बनाये जा रहे हैं। उन्हींमेंसे एक तलाक-कानून भी है। तलाक-कानून उसे कहते हैं कि कोई भी पुरुष या स्त्री एक दूसरेसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेका निर्णय सरकारसे प्राप्त कर सके। तलाक शब्द ही बड़ा भयंकर और लज्जास्पद है। धर्मविचार बतलाता है कि—समस्त जीवजन्तुओंसे प्रेम करो यानी सम्बन्ध जोड़ो; क्योंकि सभी जीव भगवान्के ही अंश हैं। तो फिर क्या कारण है कि पति-पत्नीका सम्बन्ध, जो जन्म-जन्मान्तरके लिये माना जाता है, उसे तोड़ दिया जाय? विशेष संयम या त्यागकी दृष्टिसे पति-पत्नीका बिलगाव हो तो दूसरी बात है परंतु एक दूसरेकी साधारण-सी कमीको बताकर झट तलाक देना और असंयमी जीवन बितानेको तैयार हो जाना बड़ा लज्जाजनक दृश्य है। संसारका कोई भी जीव इस प्रकार सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करता। मनुष्य जो बहुत विवेकी जीव माना जाता है, उसके द्वारा इस प्रकारका काम होना मानवताकी समाप्तिका द्योतक है!

आजकी सभ्यता, जो बाहरसे आयी है, उसीके साथ-साथ कानून बनानेका विचार भी आया है। अपने देशकी सभ्यताके आधारपर कानून बनानेका काम हमारे यहाँ नहीं होता है। इन कानूनी विचारोंमें सारा तमाशा ऊपर-ही-ऊपर चलता है। उसमें सत्य और धर्म-विचार नहीं होता है। जिस प्रकार आजकी चिकित्सापद्धतिमें रोगका कारण नहीं ढूँढ़कर रोगके वेगको ही रोकनेका प्रयत्न किया जाता है तो उसका परिणाम यह होता है कि मौजूदा रोग तो दूर होता दिखायी देता है, पर विकारका शमन न होनेसे फिर दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार सभी सामाजिक और धार्मिक कामोंको जबरदस्ती कानूनके बलपर सँभालनेका प्रयोग भी बेकार ही नहीं साबित हो रहा है, बल्कि उससे समाजधर्मका नाश हो रहा है और यह सब बड़ा दुःखदायक दृश्य राम और कृष्ण, बुद्ध और गांधीके देशमें हो रहा है! समाज-शोधनका काम तो महान् विचारकोंके प्रभावसे ही हो सकता है।

पति-पत्नीमें भेद होता क्यों है? इसका कारण जबतक नहीं ढूँढ़ा जाता है और उस कारणका जबतक निराकरण नहीं होता है, तबतक एक तलाक-कानून क्या, हजार कानून बन जाय, पर दाम्पत्यजीवनका सुख और लाभ समाजको नहीं प्राप्त हो सकेगा। कानूनसे तो भेद-वृत्तिको उत्तेजना ही मिलेगी। ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाणित हो रहा है। उससे बड़े गंदे और भयंकर मुकदमोंका विस्तार होगा, चारों ओर गंदे वातावरण उत्पन्न होंगे और पति-पत्नी सारे शील-स्नेहको तिलाञ्जलि देकर, एक दूसरेकी गलतीको अच्छे-बुरे साधनसे

किसी भी प्रकार प्रमाणित करके सम्बन्ध-विच्छेद कर लेनेके लिये खुल्लम-खुल्ला प्रयत्न करेंगे । इसका समाजपर कैसा प्रभाव पड़ेगा, यह ख्याल करनेसे ही सच्चे हिंदूका कलेजा फटने लगता है । जहाँ पातिव्रत और पत्नि-व्रत-धर्म-पालनकी प्राचीन परम्परा चली आयी है और पति-पत्नी शरीरसे दो होते हुए भी एक माने गये हैं, वहीं ऐसा सब घृणित अधिकार कानूनके द्वारा दिया जाय, यह बड़े दुःखकी बात है । हमारे यहाँ पत्नी अर्धाङ्गिनी मानी गयी है और पति तो परमेश्वरस्वरूप ही माना गया है । फिर, वहीं ऐसा क्यों हो रहा है ? पश्चिमी सभ्यताको क्यों इतना प्रश्रय दिया जा रहा है ? इसपर फिरसे अच्छी प्रकार सोचनेकी आवश्यकता है ।

राजनीतिने सबसे पहले नेताओंको फाँस लिया । वे सभी एक दूसरेको तलाक दे बैठे । इसका असर हर जगह हुआ । फिर तो, सभी दलों और समाजोंमें भेद उत्पन्न हो गया । तलाकका व्यापक अर्थ यही होता है कि एक आदमी दूसरे आदमीसे कहता है कि 'हमारा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं रह गया ।' इस प्रकार सम्बन्ध-विच्छेदका आज बोलबाला हो गया है । अधिकतर तो कानूनका ही सहारा लेना लोग सीखते हैं । विचार और धर्ममर्यादाका लोप होता जाता है । जबतक विचारका सहारा नहीं लिया जायगा, तबतक यह मामला नहीं सुलझ सकेगा ।

यह काम खासकर समाजका है । पर यह विचार न रखकर समाजकी बुराइयोंको कानूनके द्वारा दूर करनेका निर्णय केवल शासनका अहंकार ही है । अगर कानूनसे सजाका भय बताया जाता है तो उससे लाभ ही क्या होता है ? कुछ लोग गलती करनेके कारण सजा भोगते हैं, कष्ट उठाते हैं, बाकी सारा वातावरण समाजका उसी प्रकार चलता रहता है । जरूरत इस बातकी है कि सामाजिक बुराइयोंकी उत्पत्तिका कारण ही रोका जा सके, ऐसा कोई कदम उठाया जाय । पर यह काम तो कोई शुद्ध और त्यागी मण्डल ही कर सकता है । इसपर गहराईसे सोचनेकी जरूरत है । समाज-शोधकोंको इसपर ध्यान देना चाहिये । समाजके रोगोंको प्रेमपूर्वक बहिष्कार और सत्याग्रहके द्वारा दूर करनेका प्रयत्न होना चाहिये । लोगोंके विकारोंका शमन विचारके प्रभावसे करनेका प्रयत्न हो तो प्रेम और कर्तव्यकी दृढ़ता समाजमें होगी ।

तलाकके लिये कानूनी छूट देना समाजके प्रति घोर अन्याय है । इसके प्रभावसे समाज भयानक खतरेमें जा गिरेगा । भारतवर्षके लिये यह एक पाप होगा, जो भारत-वर्षके सारे गौरवको धूलमें मिला देगा और समाज चौपट हो जायगा । इसके लिये अच्छे-अच्छे विचारशील लोगोंका संगठन करना चाहिये, जो समाजके कामोंमें सच्ची दिलचस्पी ले सकें । वह मण्डल समाजमें समता बनाये रखनेका काम करे । ऐसे कार्यकर्त्ताओंको तैयार करना होगा, इस-के लिये विशेष प्रशिक्षणकी आवश्यकता होगी । वैसी प्रवृत्ति रखनेवाली संस्थाओंके द्वारा भी ऐसे कामोंमें सहायता मिल सकती है । पर यह शोभा नहीं देता है कि अगर समाजके दाम्पत्य-जीवनमें बुराइयाँ आ गयी हैं तो उसके लिये तलाकका प्रयोग करके उसकी जड़ ही काट दी जाय । यह विचार तो आसुरी है, पतनकारी है । हमारा संस्कार और हमारी सभ्यता तो दैवी विचार चाहती है । यह भी सोचने-की बात है कि जिसके शुद्ध आचरणके कारण सारा संसार आज उसकी ओर आशाभरी दृष्टिसे देख रहा है, उसी भारतमें इस प्रकारके घृणित विचारोंका प्रयोग हो, बड़ी ही लज्जाकी बात है । इस प्रकार भारत जो अध्यात्ममें संसार-का गुरु बनता आया है, उसकी मर्यादापर बड़ा आघात पहुँचनेवाला है । ऐसे सामाजिक कामोंको सरकार अपने हाथमें न लेकर समाजको करने दे और उस क्रियामें ऊपरसे समाजको मदद करे । सब काम सरकार ही करने-वाली है तो समाज कौन-सा धंधा करेगा । अगर वह बेकार होता जायगा तो बहुत बड़े-बड़े पाप उत्पन्न होते जायँगे, जिनसे समाज तो चौपट होगा ही, साथ ही सरकार

भी खतम हो जायगी। समाजकी ऐसी महीन बातें, जिनमें पर्देकी जरूरत होती आयी है, उनके प्रति सरकारी हुक्मसे निर्णय-प्राप्तिका निश्चय मर्यादा-विरुद्ध है।

आहार-विहारकी व्यवस्था ठीक करके सुशिक्षा-द्वारा आदमीको आदमी बनानेका प्रयत्न करनेका संकल्प समाज, सरकार और समाजसेवक लोग करें और उस संकल्पको पूरा करनेमें सभी लोग ध्यानपूर्वक लग जायँ तो तलाक-जैसे कानूनोंको उत्पन्न करनेवाले अनाचारोंके साथ-साथ उन तमाम सामाजिक बुराइयोंकी समाप्ति हो जायगी, जिनसे परेशानी हो रही है। वैसा शुद्ध प्रयत्न होनेसे सरकार और नेताओंको दूसरे कामोंको करनेका मौका मिल सकेगा। समाजको शुद्ध और मजबूत बनानेका यही सब उपाय काममें लाना चाहिये।*

तुम ही तुम हो

जहाँ देखता तुम ही तुम हो,
जगतीके कण-कणमें व्यापक एक तुम्हारी छविकी छाया,
अणु-अणुमें माया महान्‌की विन्दु-विन्दुमें सिन्धु समाया।
तुम महान् कानन उपवन तरु कोमल किसलय कलित कुसुम हो,
जहाँ देखता तुम ही तुम हो॥

कौन प्रात उठकर प्राचीमें है विखेरता स्वर्णिम लाली,
कौन सजाता रात गगनमें नक्षत्रोंकी नित्य दिवाली।
संध्याके कपोलमें करसे तुम्हीं लगाते नव कुङ्कुम हो,
जहाँ देखता तुम ही तुम हो॥

जड-चेतन या स्थावर-जङ्गम, खग-मृग, कीट-पतंग-भुजङ्गम,
सबमें सत्ता एक सत्यकी एक चेतनाका शुचि सङ्गम।
गाते सदा अनाहत स्वरमें साम गान, बैठे गुम-सुम हो,
जहाँ देखता तुम ही तुम हो॥

भाव-अभाव, शुभाशुभ, सुख-दुःख—ये सब केवल शब्दजाल हैं,
एक अछेद्य अभेद्य वृक्षके रंग-विरंगे विटप-डाल हैं।
और तुम्हीं सबकी मन-वाञ्छाके पूरक वह कल्पद्रुम हो,
जहाँ देखता तुम ही तुम हो॥

सुधामात्र यदि तुम वसुधापर गरल कहाँसे कैसे आया,
सत्‌से असत्, अचेतन चित्‌से, तम प्रकाशसे भिन्न न पाया।
सृष्टि-प्रलय हैं खेल तुम्हारे तुम्हीं प्रकट हो, तुम ही गुम हो,
जहाँ देखता तुम ही तुम हो॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

* हमारी संस्कृति त्यागमयी है और आज त्यागका स्थान अर्थ तथा भोगने ले लिया है और कर्त्तव्यका स्थान अधिकारने ले लिया है—इसीसे आज मनुष्य भोग तथा अधिकारके पीछे पागल है। यही सब अनर्थोंका मूल है। अपनी त्याग तथा कर्तव्यमूलक संस्कृतिके त्यागका ही यह दुष्परिणाम है। अतः समाजमें व्यक्ति-व्यक्तिमें त्याग तथा कर्तव्यका महत्त्व उत्पन्न करनेकी आवश्यकता है। —सम्पादक

समस्याओंका मूल

[एक सांकेतिक रूपक]

(लेखक—साहित्याचार्य श्रीराममणिजी त्रिपाठी एम्० ए०, साहित्यरत्न)

विकास—(झुँझलाया हुआ) समझमें नहीं आता कि आखिर बात क्या है ? इतना मर-मिटनेपर भी उलझनें कम नहीं होतीं । यों देखनेमें लोगोंकी निगाहें कहती हैं, 'तुम्हारे पास तो सब कुछ है ।' किंतु वास्तवमें हमेशा कोई-न-कोई ऐसी आवश्यकता मुँह बाये खड़ी रहती है कि सब कुछ, कुछ नहींके बराबर मालूम होता है ।

प्रगति—यही तो सोचनेकी चीज है । हमलोग साधारण स्तरसे इतने आगे आ गये कि जिसकी कल्पना करके भी लोग ऊब जायँ । वर्तमानकालकी इस अवस्थामें तो हम पूर्णतया स्वावलम्बी हो चुके हैं । हमें किसीकी अपेक्षा या चिन्ता नहीं । फिर भी कोई अज्ञात न्यूनता आकर सवार हो जाती है और सबपर पानी फिर जाता है ।

सत्य—(एकाएक आकर) यह बात आपलोग समझ भी नहीं सकते । यह विपरीत तत्त्व है । इसलिये विपरीत परिस्थिति और सिद्धान्तवाला व्यक्ति ही इस दुःखमूलका ठीक अनुभव कर सकता है ।

शान्ति—हाँ, ठीक तो है । महाशय विकास ! आपकी श्रीमती प्रगतिने अभी यह स्वीकार किया है कि हम पिछले दिनोंकी अपेक्षा बहुत आगे आ गये । यही आगे जानेकी निरन्तर-कामना ही नयी समस्याओंको खड़ी कर देती है ।

प्रगति—मानती हूँ, किंतु आपके श्रीमान् सत्यने जो यह कहा कि 'विपरीत दिशावाला व्यक्ति मेरी उलझनें समझ सकता है ।' तो क्या उस व्यक्तिकी उलझनें समाप्त हो चुकी हैं ?

संतोष—(भीतरसे आकर) नहीं । समस्याएँ सबके पास हैं, किंतु उनके मूल कारणोंमें अन्तर है । भौतिक उन्नतिकी कामनासे जो समस्याएँ खड़ी होती हैं, उनका मूल काम (कामना) और कामनाकी असफलतासे होनेवाला क्रोध (अन्यसे द्वेष) होता है । इस कामका पेट इतना बड़ा है कि कभी भर ही नहीं सकता । ये काम-क्रोध इतने पापाचारी हैं कि कोई इन-सा अधम नहीं । इनके प्रभावसे चित्त सदा चञ्चल रहता है । भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

(गीता)

विकास—यह समझमें नहीं आया कि समस्याएँ जब सबकी एक समान हैं, तब परेशानी सबके लिये एक-सी होनी है । फिर दोनोंमें अन्तर क्या है, चाहे भौतिक हो या अभौतिक ।

सत्य—सुनिये ! भौतिक समस्याओंके सुलझानेका उद्देश्य 'शारीरिक सुख' है । इनसे योग (अप्राप्तकी प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्तका संरक्षण) की प्रबल भावना उत्पन्न होती है । अपना सुख, विघ्नविनाश, सर्वाधिक शक्तिमत्ता और प्रभावशील कीर्ति प्राप्त करना ही चरम लक्ष्य होता है । इतना होनेपर भी यह आत्मिक आनन्द या तृप्तिका साधन नहीं है । अतः इनसे संतुष्टि कभी नहीं होती ।

इसके विपरीत जो समस्याएँ आध्यात्मिक आधारपर खड़ी होती हैं, जैसे—'मुक्ति', 'आत्मरति', 'भगवत्प्राप्ति' तथा 'ज्ञानप्राप्ति' इत्यादि । इन उद्देश्योंकी सिद्धिमें जो विघ्नस्वरूप समस्याएँ उपस्थित होती हैं, उनके निवारण

या समाधानके हेतु साधक छटपटाता नहीं। ईश्वरार्पण-बुद्धि या साध्यसाधनकी ऐक्य-बुद्धिसे सतत कर्तव्य-पालनमें ही उसे संतुष्टि रहती है; क्योंकि फल भोगनेकी भौतिक कामना उसमें नहीं होती।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता)

श्रीकृष्ण भगवान्‌का कथन है कि 'जो लोग अनन्य-भावसे नित्य आग्रहपूर्वक मेरी उपासना करते हैं, उनके योगक्षेमका भार मैं स्वयं वहन करता हूँ।'

इसपर विश्वास करके वे अपना सब कुछ ईश्वरपर छोड़ देते हैं। अतएव व्यग्रताका कोई प्रश्न नहीं उठता।

प्रगति—कर्मयोगकी बात तो भौतिक जीवनपर भी लागू होती है। कर्ममें तल्लीनता और कुशलता भी तो योग ही है।

'योगः कर्मसु कौशलम्।'

शान्ति—ठीक है, किंतु कर्मफलका त्याग और ईश्वरार्पण बुद्धि होनेपर ही वह 'योग'की श्रेणीमें आता है।

विकास—भौतिक कर्मोंके फलोंका त्याग केवल ढोंग है। यदि फलकी कामना नहीं तो वे कर्म आरम्भ ही क्यों किये जायँ? फिर इस बीचमें ईश्वरको खींचकर लाना तो कमजोरी मात्र है। प्रश्न तो सीधा-सा यह है कि अशान्ति, असंतुष्टि, व्यग्रता और निरानन्दका कारण क्या है? भौतिक संघर्षका निदान (आदि-कारण) क्या है?

सत्य—जाने दीजिये कर्मफलत्याग और ईश्वराग्रहको। फिर 'कर्म' को 'कर्मयोग' बनानेके लिये, उसके पहले 'निष्काम' शब्द जोड़ना पड़ेगा। आपका भौतिक कर्म जब सकाम है, तब उसे केवल 'कर्मबन्ध' कहा जायगा।

प्रगति—अजी, कर्मयोग नहीं, यह तो अप्रासंगिक चर्चा चल पड़ी। 'कर्मबन्ध' ही सही। मुझे इतनेसे मतलब है कि विविध समस्याओंके बीच धैर्य और शान्ति किस प्रकार स्थिर हो सकती है। यदि इसका समाधान नहीं है तो मुझे 'निष्काम कर्मयोग' और 'अपवर्ग' से दूर ही रहना है।

संतोष—एक मामूली-सी बात है, इसके लिये इतनी भूमिका क्यों? श्रीमान् विकासजी और श्रीमती प्रगति महोदया! इतना तो आपलोग स्वयं ही अनुभव करते होंगे कि 'भौतिक आवश्यकताएँ' नित्य नये रूपमें आपके सामने आती हैं।

वि० और प्र०—हाँ-हाँ, उन्हींके पूरा करनेमें तो सारा जीवन समाप्त हो रहा है। फिर भी वे कम नहीं होतीं।

संतोष—साथ ही यह भी आप मानेंगे कि उनकी पूर्तिसे प्राप्त होनेवाले फलकी ओर 'उत्सुक-कामना' भी होती है। प्रयत्नकी दशामें 'आशा' भी बलवती होती है। 'तृष्णा'पूर्वक जिस वस्तुकी 'इच्छा' की जाती है, उसके प्रति एक 'लोभ' सा हो जाता है और सफलता न मिलने-पर अतृप्ति, असंतोष, बेचैनी और झुँझलाहट पैदा होती है।

प्रगति—बिल्कुल ठीक। यही तो दुःखका कारण है।

सत्य—बस, तो स्पष्ट है कि उत्तरोत्तर बढ़ती हुई, कामना, तृष्णा, इच्छा, लोभ और असंतोष ही स्वयं समस्याएँ बनकर सामने आ जाते हैं।

विकास—बात तो ठीक है मित्र! किंतु इससे बचना भी तो कठिन है। निम्नतमसे उच्चतम आकाङ्क्षाओं तकमें ये चीजें हैं, तो क्या मानवको अपने सभी कर्तव्योंको छोड़कर अकर्मण्य बन जाना चाहिये?

शान्ति—नहीं, तनिक सोचिये, अपनी स्थिति और विपुल ऐश्वर्यसे किसी निःस्व (निर्धन) का मिलान कीजिये। जिन इच्छाओंकी पूर्ति आपने चुटकी बजाते की है, वही उसके कठिन प्रयाससे असम्भव है। अतः

वह उसके प्रति 'आशा' करना छोड़कर निश्चिन्त है। आशाओंका शिथिल होना ही शान्ति-प्राप्तिका उपाय है।

'आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य।'

तथा—

'तया बद्धाः प्रधावन्ति मुक्तास्तिष्ठन्ति पंगुवत्।'

अर्थात् जो आशाके अधीन हैं, वे सारी दुनियाके गुलाम हैं। तथा—इस आशापाशसे बँधकर लोग इधर-उधर दौड़ते हैं और जो मुक्त हैं, वे पंगुवत् अचल रहते हैं।

इसी 'आशा'को उपनिषदोंमें एक प्रबल शक्ति बताया है। 'छान्दोग्य उपनिषद्'में—'नामसे वाक्, वाक्से मन, मनसे संकल्प, संकल्पसे चित्त, चित्तसे ध्यान, ध्यानसे विज्ञान, विज्ञानसे बल, बलसे अन्न, अन्नसे पानी, पानीसे तेज (प्रकाश), तेजसे आकाश, आकाशसे स्मर (काम) और स्मरसे आशा' ये सब उत्तरोत्तर बलवान् बताये गये हैं। यथा—

'आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो
मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते······॥'
(छान्दोग्य० ७ । १४ । १)

प्रगति—आशाके कारण इतनी अतृप्ति क्यों? आशाके विघातमें थोड़ा विषाद अवश्य होता है, किंतु·········।

सत्य—'आशा'का पक्का साथी 'असंतोष' है। यही असंतोष बेचैनीका कारण है। यदि आदमीको यह संतोष हो कि 'जो होगा देखा जायगा'। वह किसी 'तृष्णा' के पीछे अपना मानसिक संतुलन न खो बैठे, तो उसके पास व्यग्रता नहीं आ सकती। 'यथालाभ संतोष' का सिद्धान्त बन जानेपर सभी समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं।

'संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम्।'

अर्थात् संतोष ही पुरुषका श्रेष्ठ धन है।

विकास—यह तो वैरागी बननेकी शिक्षा है। कर्मपथ-में आशावाद, प्रयत्न, असंतोष आदि तो आते-जाते रहते हैं।

संतोष—यदि आते-जाते रहते हैं तो भी कुशल है। इनके टिकनेपर ही भय है और यहाँ प्रश्न टिकने-की हालतमें ही खड़ा हुआ है। 'सत्य' महाशयके उपर्युक्त कथनका तात्पर्य यह है—'असंतोष' और 'आशा' जब बद्धमूल हो जाते हैं, तब 'तृष्णा' का साम्राज्य अचल हो जाता है। भौतिक या अभौतिक, पावन या जघन्य जिस किसी उद्देश्यमें इन दोनोंका डेरा अचल हुआ कि तृष्णाने जड़ पकड़ी। फिर तो इस जन्मकी बात ही क्या, वह जन्मान्तरमें भी पल्ला छोड़नेको तैयार नहीं।

सारांशतः आशा-तृष्णा ही इस जीवके दुःख, बन्धन और अतृप्तिके कारण हैं। तृष्णाका चस्का सदा बढ़ता ही जाता है। कहा है—

'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्'

'जीर्यन्ते जीर्यतः केशा
दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रौ च जीर्येते
तृष्णैका तरुणायते॥'

अर्थात् 'आशा ही परम दुःख है और निराशा ही परम सुख है।' 'जीर्णोन्मुख व्यक्तिके केश जीर्ण होते हैं, दाँत भी जीर्ण होते हैं, कान और आँखें जीर्ण हो जाती हैं; किंतु तृष्णा केवल जवान होती जाती है।'

किसी भी स्थितिमें मनुष्यकी समस्याएँ पूर्णतः हल नहीं हो सकतीं और न उसे सुख-शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है, जबतक 'तृष्णाक्षय' न हो। 'तृष्णाक्षय'-से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसके सामने स्वर्गसुखकी कल्पना भी दुःखमयी है।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

लोकमें जो सकाम सुख होता है तथा जो स्वर्गीय महासुख है, ये दोनों भी तृष्णाक्षयजन्य सुखके सोलहवें अंशके भी बराबर नहीं हैं।

प्रगति—किंतु तृष्णाका व्यापार बंद होना भी तो आसान नहीं है।

सत्य—तृष्णा मनका विकारमात्र है। वास्तवमें मन ही प्रत्येक क्रियाओंका संचालक है। अतएव वही हर दशामें मूल कारण बनता है।

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'

मन ही मनुष्योंके बन्धन और मुक्तिका कारण है। अतः इसीपर नियन्त्रण करनेसे सभी समस्याओंका समाधान हो सकता है। यद्यपि इसका वेग हवासे भी तीव्र है। किंतु—

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।'

'अभ्यास' और 'वैराग्य'से मनका वेग रोका जा सकता है। मनको चारों ओरसे मोड़कर किसी सदुद्योगमें केन्द्रित करनेको ही 'मनोयोग' कहते हैं।

'मन' इन्द्रियोंका संचालक है। सभी इच्छाएँ इसकी दासियाँ हैं, किंतु बुद्धि और आत्मा मनसे भी श्रेष्ठ हैं।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

(गीता)

'इन्द्रियाँ (शरीरमें) प्रबल होती हैं। ये ही प्रधान हैं; किंतु मन इनसे भी श्रेष्ठ है। बुद्धि मनसे भी श्रेष्ठ है और जो बुद्धिसे भी परे है, वह परमात्मतत्त्व है।'

इस प्रकार चञ्चल इन्द्रियोंके द्वारा संचालित इच्छा, तृष्णा, आशा आदि मनके अधीन हैं। अतः मनका 'संतुष्ट' होना ही एक समाधान है। इच्छाओंका अन्त नहीं होता। सदा एकके बाद दूसरी समस्या आती ही रहती है। इसलिये सामान्यभावसे कर्तव्य-तत्पर होते हुए हर दशामें मानसिक संतोषका संतुलन बनाये रखनेमें ही कल्याण, सुख और शान्तिका प्राप्त होना सम्भव है, अन्यथा—सम्राट्को भी सुख नहीं और न इन्द्रको सुख है। तृष्णारहित, मनोयोगी, संतोषी, विवेकी, विरक्त और शान्तचित्तको ही आत्मानन्द प्राप्त होता है। उसके लिये कोई समस्या व्यग्रताका कारण नहीं बनती।

संतोषादनुत्तमसुखलाभः। (योगदर्शन)

मेरे मनमें अब प्रभु स्वच्छन्द विहार करते हैं

मेरे मनमें नित प्रविष्ट रह, ईश्वरका मन करता काम।
ईश्वरके मनके ही होते उदय दिव्य संकल्प ललाम॥
रहा न मेरे मनमें कुछ भी, ईश्वरके मनके अतिरिक्त।
रहता सदा इसीसे वह मधुमय भगवद्-रससे अभिषिक्त॥
मेरे मनको नित्य बनाये रखते प्रभु निज मनका यन्त्र।
करते उससे अपने मनकी मनमोहन वे परम स्वतन्त्र॥
रहा न कोई मुझमें करनेवाला अब शुचि-अशुचि विचार।
अन्तर्द्वन्द्व मिट गये सारे, मिटे मोहके सभी विकार॥
प्रभुके मनमें निजको खोकर मन हो गया अमन मेरा।
उठा असत् आशा-तृष्णाका, ममताका सारा डेरा॥
क्रीड़ा करते अब उसमें, उससे प्रियतम इच्छा-अनुसार।
करते रहते नित उसमें, उससे वे अब स्वच्छन्द विहार॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

महात्माके लिये सरयूकी कृपा

भले ही अपनी अज्ञानताके कारण, आजकी प्रगतिशील दुनियाका ज्ञानवान् कहलानेवाला मानव, भगवान्‌के, 'अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने' इत्यादिके सिद्धान्तपर विश्वास न करे, इससे उस अनन्त, लीलामय और कृपासागर प्रभुका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। फिर भी कभी-कभी वह हमारे ही सम्मुख ऐसे अद्भुत चमत्कार कर दिखाता है, जिसकी कल्पना ही हमारे मन, बुद्धि और कर्मसे परे होती है।

अल्मोड़ा जनपदकी नदी सरयूके सम्बन्धमें किसीने कहा—'गङ्गा मरे हुओंको तारती है, पर सरयू जीवित लोगोंके ही शान्तिका पथ प्रशस्त कर देती है।'

इसके अनुसार सरयूके गुणोंका परिचय भी बहुत लोगोंको होता रहता है। इस नदीके चमत्कार यदा-कदा, इस क्षेत्रके लोगोंको, आश्चर्यचकित कर ही देते हैं। सम्भवतः ऐसी घटनाओंके कारण, इसके प्रति इस पर्वतीय प्रदेशके भोले लोगोंका विश्वास दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

दो-तीन वर्ष पूर्व वर्षा-ऋतुमें यहाँ एक भयावह दुर्घटना हुई थी। इस जनपदके मल्ला दानपुर लोहारखेत गाँवकी यह करुण कहानी है।

इस गाँवके एक उच्च स्थानपर, एक पहाड़ीके नीचे, एक महात्माकी कुटी थी। वह महात्मा पिछले कुछ वर्षोंसे उस कुटियामें रहकर, देवाधिदेव भगवान् शंकरकी अर्चनामें लीन था। पासके गाँवसे, उसे जो कुछ भी प्राप्त होता, उसीमें संतुष्ट रह, प्रतिदिन सरयूमें स्नान कर, एकान्तमें प्रभु-चिन्तनद्वारा, सम्भवतः अपने पूर्वजन्मके पापोंका प्रायश्चित्त और इस जन्ममें पुण्योंका संचय कर रहा था।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके दिन, सरयूमें स्नान कर, पूजा-पाठसे निवृत्त हो, एकान्तमें वह मन-ही-मन उस कृपामय प्रभुका चिन्तन कर ही रहा था कि एकाएक एक महिला उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। उसके अलौकिक और दिव्य रूप-लावण्यको देखकर महात्माकी आँखें चौंधिया गयीं।

वह महिला बोली—'तू किसकी आज्ञासे यहाँपर आसन जमाये बैठा है रे जोगी! भाग यहाँसे अभी अपनी झोली-चिमटा लेकर; उठ, अभी भाग जा, फौरन चला जा।'

महात्मा भक्त तो था, पर उसकी समझमें कुछ न आया और न वह यही समझ सका कि आखिर इस एकान्तमें इस महिलाका उसे इस प्रकार तंग करनेका प्रयोजन क्या है। आखिर मेरी फूसकी झोंपड़ीसे इसे क्या हानि हुई है। फिर भी शान्त होकर वह बोला—'माई! कुछ सुरम्य स्थान देखकर पिछले कुछ वर्षोंसे इस पहाड़ीके नीचे भगवान् शंकरसे अपने प्राकृत कर्मोंकी क्षमायाचना कर रहा हूँ। मन, वाणी, कर्मसे किसीको कोई हानि न हो, ऐसा प्रयत्न करता हूँ। आप माँ हैं, आप ही बताइये, आज्ञा दीजिये मैं कहाँ जाऊँ।'

'मेरा यह ठेका नहीं कि तुझे तेरे योग्य स्थान बताऊँ। पर चला जा अभी यहाँसे। अच्छा, देख मैं जाती हूँ, पर याद रख यदि तू आजके सूर्यास्तसे पूर्व यहाँसे न भागा तो तेरी हड्डियोंको इस सरयूमें मछलियाँ चबायेंगी'—इतना कह वह महिला चली गयी।

महात्माको जैसे काठ मार गया। किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया बेचारा। फिर भी यह देखता रहा, आखिर यह महिला कौन है, और जाती कहाँ है? उसने देखा कि पहाड़ीमें चलती हुई वह सरयूके किनारेतक गयी और एकाएक सरयूके उस अनन्त, अगाध और अथाह जलके मध्य विलीन हो गयी। वह साक्षात् माँ सरयू ही थी।

इधर महात्मा अपनी कुटियासे भगवान्‌की प्रतिमा, झोली, चिमटा और कमण्डलु लेकर चल पड़ा। जाते हुए गाँववालोंने उसे देख लिया और वे समझ न पाये कि वह कहाँ जा रहा है, इस जन्माष्टमीके दिन।

पूछनेपर पता चला कि अब वह सदाके लिये यहाँसे चला जा रहा है। ऐसा समाचार सुनते ही सारे ग्रामवासी उसके पास आये और उन्होंने उससे प्रार्थना की—'महात्मन्! इतने दिन साथ रहे, अब हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं। कम-से-कम आज तो रह जाइये, आज श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी है। ऐसे पर्वपर हमें न छोड़िये।'

ग्रामवासियोंके आग्रहको देखकर महात्माने कहा—'यदि आपलोगोंकी ऐसी ही इच्छा है तो नीचेवाले गाँवमें रह जाऊँगा, यहाँ नहीं।'

गाँववालोंकी समझमें न आया, बेचारे उलटे आत्मग्लानिसे भर गये कि आखिर किसने महात्माका अपमान कर दिया, इन्हें किसकी कौन बात चुभ गयी ?

पर महात्मा चले गये।

ठीक उसी रात क्या हुआ। तूफान, भयंकर आँधी, फिर मूसलाधार वर्षा और न मालूम क्या-क्या। ऊपरकी पहाड़ीमें एक दिव्य ज्योति, जैसे हजारों विद्युत्-बल्बोंका प्रकाश हो, गाँववालोंको दिखायी दी और उसीके साथ-साथ वह पहाड़ी भी नीचेकी ओर धँस गयी। एक पर्वतके ढह जानेसे सरयूका प्रवाह भी रुक गया। सरयू पलट गयी और सारा गाँव ही सरयूके प्रवाह और उस पहाड़ीमें ही सदाके लिये विलीन हो गया। कितने ही मनुष्य, पशु, ढोर दब गये, बह गये और उस बवंडरमें समा गये। कितनोंके अङ्ग-भङ्ग हो गये, कितने उस दर्दनाक दृश्यको ही देखकर बैठ गये। मनुष्य, पशु, सम्पत्ति किसकी कितनी हानि हुई, किसीको ठीक पता न चला। महात्माकी झोपड़ीका तो नाम-निशान भी न था। यहाँपर एक बस्ती थी, इसका कोई भी चिह्न अवशेष न रहा। जो था भी वह भयानक, दर्दनाक और करुणाकी सीमातक पहुँचा हुआ!

दूसरे दिन सबने देखा, कुछ दिनों बाद समाचारपत्रोंमें सबने पढ़ा। किसीने कहा—'इस धरतीके गर्भमें ज्वालामुखी है, यहाँकी मिट्टी ही ऐसी है, जो एक-न-एक दिन अवश्य ही धँस जाती।' कोई बोले—'पहाड़ियोंके गाँवोंका कोई ठिकाना नहीं, कब बस जायँ और कब धँस जायँ।'

यह सब महात्माने भी देखा—कह नहीं सकते कि उसने क्या सोचा, पर उसी दिनसे उसने यह संकल्प कर लिया कि अब उसका जितना भी जीवन अवशेष रहेगा, वह इसी सरयू माँके किनारेपर रहेगा, भले ही कहीं रहे।

ऐसी बातें उस महात्मासे सबने सुनीं, पर कह नहीं सकता कि कितने लोगोंने इसपर विश्वास किया।

तबसे उस महात्माको आस-पासकी बस्तीमें किसीने नहीं देखा। हाँ, पिछले वर्ष सुननेमें आया कि एक महात्मा सरयूके किनारे कहीं एक पहाड़ीके नीचे बैठा था।

—देवेन्द्रकुमार गन्धर्व

(२)

गुप्त दान

कई वर्षों पहलेकी बात है। राजस्थानमें भीषण अकाल था। गौओंकी बड़ी दुर्दशा थी। उस समय गीताप्रेसकी ओरसे राजस्थानमें स्थान-स्थानपर सहायताका काम हो रहा था। रतनगढ़में भाईजी काम देख रहे थे। वे एक दिन दुपहरको अपनी बैठकमें अकेले बैठे डाक देख रहे थे कि वहींके एक सज्जन, जो बहुत सम्पन्न थे, जिनका बंगालमें बड़ा कारोबार था, बड़े दानी थे, पर जो अपने लिये व्यय करनेमें बड़े ही अनुदार थे, घुटनोंतककी धोती, एक कमरी तथा सिरपर पगड़ी, जाड़ेमें एक बीकानेरी कंबल—यही उनकी पोशाक थी। वे रिश्तेमें भाईजीके मामा लगते थे,—आये, भाईजीने प्रणाम करके आनेका कारण पूछा। उनके हाथमें एक कागजका छोटा-सा पुलिंदा था, उसे भाईजीके हाथमें देते हुए बोले——'ले भैया! ये दस हजार रुपयेके नोट हैं, इस समय तू अकेला मिलेगा, इसीसे दुपहरीमें आया हूँ, इनको गायोंकी सेवामें लगा देना। पर देखना, कहीं·······का नाम न आने पाये। भगवान्‌की चीज भगवान्‌की सेवामें लगे, इसमें देनेवाले किसी दूसरेका नाम क्यों आना चाहिये ?' भाईजीने मुस्कुराते हुए नोट ले लिये। वे जानते थे मामाजीकी गुप्तदान क्रियाको। भाईजीने पीछे बताया कि इस प्रकार प्रचुर धनका ये दान करते हैं। जगह-जगह कुएँ-तालाबोंकी मरम्मत कराते हैं, नये भी बनवाते हैं, पर इनके नामकी जानकारी केवल वहीं होती है, जहाँ बिना नाम बताये काम चलता नहीं। आजके दानके नामपर इन्वेस्टमेंट करनेवाले—और दानसे पहले ही समाचारपत्रोंमें समाचार भेज देनेवाले दानी महोदय इससे शिक्षा ग्रहण करें!

—एक जानकार

(३)

विचित्र सेवा

गत २० अप्रैलको दिल्लीकी एक गरीब बस्तीमें भयानक आग लगी। बहुत नुकसान हुआ। पाँच हजार मनुष्य बिना घर-बारके हो गये और लगभग बीस आदमी जल मरे। दुपहरको बारह बजे आग लगी थी, उस समय पुरुष तो

अधिकांश कामसे बाहर गये हुए थे । एकके बाद एक घरोंमें आग फैलती गयी और देखते-ही-देखते बहुत-से घर खाक हो गये ।

यों एक ओर अग्निका प्रकाण्ड ताण्डव हो रहा था, दूसरी ओर लगभग तीस वर्षकी एक स्त्री बहुत बड़ी बहादुरीका काम कर रही थी । उसके पड़ोसके घरके सब लोग बाहर गये हुए थे । आग वहाँ भी पहुँच गयी थी, इसी बीच वह स्त्री पड़ोसीके उस जलते घरमें कूदकर जा पहुँची और घरके कपड़े-लत्ते, बर्तन तथा अन्यान्य सामानोंको बाहर निकालती गयी । वहाँ इकट्ठे हुए लोगोंने पुकार-पुकार उसे समझाया कि 'देखो उधर तुम्हारा घर आगकी लपटमें आ गया है, जाकर जो कुछ बने सामान निकाल लो ।' पर उसने किसीकी बात नहीं सुनी । वह निडर स्त्री अपने काममें लगी रही । जबतक उस घरका तमाम सामान निकाल न दिया, तबतक हटी नहीं । जलते घरमें आने-जानेसे उसके हाथ-पैर तथा बाल भी कई जगह जल गये, परंतु इसका कोई दुःख उसे नहीं था । वह अपना कर्त्तव्यपालन करके प्रसन्न थी ।

कुछ ही देरमें वह पड़ोसके घरवाला आया । अपने सारे सामानको सही-सलामत पाकर उसके हर्षका पार न रहा । अगल-बगलवालोंने बताया कि तुम्हारे घरके सारे सामानको बचानेवाली तो वह स्त्री है । तुरंत वह जाकर उस स्त्रीके पैरों पड़ गया और बोला कि 'बहन, यह तुमने क्या किया । अपने घरकी कुछ भी परवा न करके मेरा घर बचाया ।' इसपर उस स्त्रीने शान्तिके साथ उत्तर दिया—'भाई ! मैंने समझ-बूझकर ही यह सब किया है । अभी दस ही दिनके बाद तुम्हारी कन्याका विवाह होनेवाला है । लड़कीको देनेके लिये तुमने कितनी तकलीफें उठाकर सामान इकट्ठा किया था । ये सब चीजें आगमें जल जातीं तो तुम फिरसे इन्हें कहाँसे जुटा सकते । परिणामस्वरूप लड़कीका विवाह रुक जाता । मेरा घर जल गया तो कोई बात नहीं, मैं किसी भी झोंपड़ीमें जा रहूँगी । पर तुम्हारी लड़कीका तो घर ही न बँधता ।' यह सुनते ही उस भाईकी आँखें आँसू बहाने लगीं । उसके मुँहसे सहज ही निकला—'इस तपोभूमि भारतमें अब भी ऐसी देवियोंका अभाव नहीं है । 'अखण्ड आनन्द'

—जेठालाल कानजी शाह

(४)

सामूहिक प्रार्थना

गत बाईस फरवरीकी घटना है । मैं और श्रीसोमप्रकाश 'गौतम' पाठशालामें अपनी-अपनी कक्षाओंको पढ़ानेमें व्यस्त थे । अकस्मात् दोपहरके बाद लगभग डेढ़ बजे एक भैंस रस्सा तोड़कर हमारी पाठशालाकी ओर भागी-भागी आयी । उसके पीछे एक स्त्री पकड़ो-पकड़ो पुकारती हुई दौड़ रही थी । मैंने भैंसका रस्सा पकड़ लिया और किसी कदर भैंसको रोक लिया; किंतु मैं उसे बहुत देर थामे नहीं रख सका । भैंस मुझसे छूटकर भाग गयी; भैंसने अपनी गति और भी तीव्र कर दी । पास ही एक रोशनी देवी नामकी कन्या लगभग आठ वर्ष आयुकी अपनी तख्ती साफ करके आ रही थी । दुर्भाग्यसे भैंसका रस्सा कन्याके दायें पाँवमें फँस गया । कन्या गिर पड़ी और वह भैंसके साथ कंकरीले पत्थरों और काँटेदार झाड़ियोंपरसे घसिटती हुई लगभग एक सौ बीस गजकी दूरीतक चली गयी । कन्या बुरी तरह जख्मी हो गयी, उसे श्री 'गौतम' ने किसी प्रकार भैंसकी लपेटसे छुड़ाया । हमें उसके बचनेकी कोई आशा प्रतीत नहीं होती थी । कन्याको तुरंत चिकित्सालय पहुँचानेकी व्यवस्था की गयी । मेरे नेत्रोंके सामने और मेरी ही पाठशालाके आँगनमें ही यह दुर्घटना घटी; मुझे यह सब देखकर अत्यन्त दुःख हुआ । मेरी प्रबल चाह थी, किसी प्रकार इस अभागी छात्राके प्राण बच जायँ । मुझे और तो कुछ नहीं सूझा । मैंने पाठन-कार्य बंद कर दिया । पास ही पीपल और बरगदके वृक्ष थे, सब विद्यार्थियोंसे कहा कि 'आओ, इन वृक्षोंकी परिक्रमा करें और भगवान्से प्रार्थना करें कि रोशनीके प्राण बच जायँ, ईश्वर उसे जीवन-दान प्रदान करे' । मैं भी छात्र-छात्राओंके साथ परिक्रमामें सम्मिलित था । लगभग आध घंटेतक सामूहिक प्रार्थनाका यह क्रम शान्त वातावरणमें चलता रहा । साढ़े चार बजे सायं श्री 'गौतम'जीने हमें बताया कि 'कन्याको चेतना आ गयी है और उसने आँखें खोल दी हैं, दूध इत्यादि भी पी लिया है ।' अबतक मेरे पास ग्रामके नर-नारियोंका जमघट हो चुका था । इस सूचनाको सुनकर हमारी प्रसन्नताका कोई पारावार न रहा ! हम सब उस ईश्वरको लाख-लाख धन्यवाद देने लगे, जिस प्रभुने हमारी सामूहिक प्रार्थनाको इतना शीघ्र सुन लिया !

कन्या अब स्वस्थ है। मेरे विचारमें यदि ऐसी सामूहिक प्रार्थनाएँ की जायँ तो वे अपना तत्काल फल दिये बिना नहीं रह सकतीं। यह मैंने आज प्रत्यक्ष ही देख लिया है। धन्य है प्रभु तेरी लीला। केवल विश्वासकी आवश्यकता है, तर्ककी नहीं।

—ब्रजलाल 'निरंकुश'

(५)

धोबीकी ईमानदारी'

यह घटना तीन-चार साल पुरानी है। हमारे यहाँ एक धोबी कपड़े धोने आता था। वह धोबी बहुत पुराना था। एक दिन धोखेसे सोनेके बटन कमीजमें लगे रह गये। धोनेको दिये दूसरे सारे कपड़ोंके साथ वह कमीज भी धोबीको दे दी गयी। बटनोंकी कीमत लगभग २५०) रुपये थी। शामको जब बटनोंकी आवश्यकता हुई, तब उनको ढूँढ़ा गया परंतु बटन कहीं न मिले। हमलोग संतोष करके बैठ गये। किसीको यह ख्याल ही नहीं था कि बटन कमीजके साथ धोबीके यहाँ चले गये।

अचानक दूसरे दिन वह धोबी दौड़ता हुआ आया और बटन देकर बोला—'बाबूजी! यह बटन आपकी कमीजमें लगे हुए थे। सँभाल लीजिये।' हमलोग धोबीकी इस ईमानदारीपर बहुत खुश हुए और उसको हमने इनाम देना चाहा, परंतु उसने साफ इन्कार कर दिया!

—विष्णु [कानपुरी]

(६)

भलेकी भलाई सबकी भलाई करती है

दो भाई थे, गोविंदराम और लालचन्द! कपड़ेकी छोटी-सी दूकान थी देहातमें कलकत्तेके समीप। मजेमें कमाते-खाते थे। बीचमें दो-तीन बच्चोंके विवाह हुए, देश जाना-आना पड़ा। खर्च अधिक लग गया। पीछेसे काममें भी नुकसान हुआ। कुछ दिनों बाद दैवकी लीलासे गाँवोंमें बाढ़ आ गयी। लगभग पाँच-छः हजार रुपये गाँववालोंमें, जो लेने थे, वे डूब गये; क्योंकि बाढ़से गाँववाले तबाह हो चुके थे। कलकत्तेके महाजनके लगभग पंद्रह हजार रुपये इन्हें देने थे। माल आता, रुपये जाते, तब तो काम चल रहा था, पर इधर रुपयोंकी टान होनेसे रुपये भेजे नहीं गये। माल भी नहीं मँगाया गया। काम ठप हो गया। कलकत्तेवाले महाजनने आकर देखा, दूकानमें माल नहीं है, न रुपये हैं, अतएव उसने इनको रुपयोंके लिये तंग करना शुरू किया। इन्होंने किसी प्रकार भी व्यवस्था करके रुपये चुकानेके लिये एक महीनेका वादा करके उसको लौट जानेके लिये कहा। वह विश्वास करके लौट गया। इनकी ईमानदारीपर उसे विश्वास था और बहुत पुराना व्यवहार था।

अब दोनों भाइयोंने विचार किया, पर मतभेद हो गया। लालचन्द कहता था कि 'स्त्रियोंका गहना तथा देशकी जमीन बेचकर रुपये चुका दिये जायँ, तो महाजनको विश्वास हो जायगा। वह माल उधार देने लगेगा तो फिर कमा लेंगे।' पर गोविंदरामका कहना था कि 'देशमें तो यह नालिश कर नहीं सकता; (क्योंकि उस समय राजस्थानमें राजाओंका राज्य था) अतएव दूकान बंद करके देश चले चलें। गहना तथा जमीन न बेची जाय। हाथसे यह सब निकल जायगा तो दरिद्र हो जायँगे।' लालचन्द ईमानदारीपर था, तो गोविंदराम रुपये बचानेके लिये महाजनको चकमा देना चाहता था!

गोविंदराम नहीं माना, तब लालचन्दने कहा—'भैया! तुम अपने हिस्सेका गहना तथा जमीन बचा लो। मैं तो महाजनको दूँगा ही।' गोविंदरामने उसको समझाना चाहा, पर लालचन्द नहीं माना। इधर लालचन्दकी बात गोविंदरामको नहीं जँची। लालचन्द कलकत्ते गया, सौभाग्यसे महाजनने इस शर्तपर और इस आशयकी एक चिट्ठी अपने नामसे लिख देनेपर कि 'रुपये कमानेपर फिर दे दिये जायँगे' आधी रकममें सलटा लिया। लालचन्दने अपने हिस्सेकी जमीन तथा अपनी स्त्रीका गहना बेचकर महाजनको आधी रकम देकर उससे चुकतेकी रसीद (फाड़खती) ले ली। उसने महाजनको यह नहीं बताया कि वह अकेला अपना गहना-जमीन बेचकर दे रहा है, गोविंदराम कुछ नहीं दे रहा है। वह यह कहता तो महाजन मानता ही नहीं। अस्तु!

उसने आकर सब बात भाईसे कह दी। भाई प्रसन्न हो गया। उसका गहना बच गया और महाजन भी मान गया। लालचन्दका गहना-जमीन गये तो बलासे!

कहीं-कहीं कर्मफल हाथों-हाथ ही मिल जाया करता है या उसी प्रकारका प्रारब्ध सामने आ जाता है। लालचन्दकी सास कलकत्ते रहती थी। उसके एक लड़की (लालचन्दकी पत्नी रुक्मिणी) के सिवा और कोई संतान नहीं थी। उसके लगभग साठ हजार रुपये, दस-बारह हजारका गहना और तीस-चालीस हजारकी देशमें जमीन थी। वह अकस्मात् बीमार हुई। लालचन्द तथा उसकी पत्नी तो उसके मरण-समय नहीं पहुँच सके, पर वह मरते समय एक दस्तावेज

(बसीयतनामा) बाकायदा अपने एक ईमानदार पढ़े-लिखे सम्बन्धीकी सलाहसे लिख गयी, जिसमें उसके द्वारा अपनी सारी सम्पत्ति अपनी लड़की रुक्मिणीको दे दी गयी थी, सिर्फ पाँच हजार उसके खर्चे (द्वादशाह श्राद्ध) आदिमें लगानेकी हिदायत लालचन्दको दी गयी थी। यह रहस्य खुलनेपर सहज ही लालचन्द धनी हो गया। उधर भाई गोविंदरामके मनमें बेईमानी आ गयी थी। अतः उसने अपने हिस्सेकी देशकी जमीन अपने एक सम्बन्धीके नाम बेची कर दी थी तथा गहना भी उसे दे दिया था। दुर्भाग्यसे वह घाटेमें था। गोविंदरामको पता नहीं था। उसने गहना बेचकर रुपये बरत लिये तथा देशकी जमीन-पर उसके किसी पावनेदारकी कुर्की आ गयी। यों गोविंदराम फकीर हो गया। पर लालचन्दकी और उसकी स्त्रीकी सदाशयताने उसे अकिंचन—फकीर नहीं होने दिया। अपनी रकममेंसे उसको आँधी पाँती उन्होंने दे दी। दोनों भाई पुनः सुखसे कारोबार करने लगे। भलेकी भलाई सबका सदा भला ही करती है।

—रतनलाल शर्मा

(७)

आँव (आमातिसार) की अनुभूत दवा

कैसा भी आँव हो, (पेट कटना, मवाद-रक्त आना, बार-बार पाखाना होना) जिसे अंग्रेजीमें डिसेन्ट्री (Dysentry) कहते हैं, इससे आराम हो जाता है। यह मेरा २३-२४ वर्षका अनुभव है। पर इसका प्रयोग 'पैसा कमानेके लिये' बिल्कुल नहीं करना चाहिये।

वह दवा है—जपा या जवा पुष्प (जिसे इधर 'अड़हुँल' कहते हैं, जिसका अंग्रेजी नाम China-Rose है, नामक लाल फूल) जिसके द्वारा देवीजीकी पूजा विशेष-रूपसे की जाती है। बारह वर्ष या इससे छोटी उम्रवाले रोगीको, फूलका ऊपरका हरा छिलका छीलकर फेंक दे और भीतरका एक फूल या अवस्थानुसार उससे कम, चार आने भर मिश्रीके साथ चबा दिया जाय। बारह वर्ष-से बड़ी उम्रवाला रोगी इसी प्रकार दो फूल चबा ले। यह खानेमें खराब नहीं लगता वरं स्वादिष्ट लगता है। दवा सुबह-शाम किसी भी समय दिनभरमें एक बार लेनी चाहिये। एक बारमें लाभ न हो तो एक या दो दिनतक एक-एक बार और भी लेनी चाहिये। पथ्यमें दही, चिउरा, चीनी एक दो बार लेनेसे जल्दी लाभ होता है।

—हीराप्रसाद वर्मा

अशोक होटलमें गोमांस

'कल्याण'के गत दूसरे अंकमें इस विषयपर लिखा गया था। पिछले दिनों संसद्में कहा गया है कि सरकार अशोक होटलमें गोमांसको हटानेके लिये तैयार नहीं है। यह वास्तवमें बहुत ही दुःख तथा लज्जा-की बात है। 'अतिथि-सत्कार' हमारा धर्म है, पर किसी भी ऐसी चीजको हम उन्हें दें, जिससे उनका तथा हमारा दोनोंका अहित होता हो, जो देशके बहुत बड़े भागके लोगोंकी दृष्टिमें सर्वथा घृणित तथा भयानक पाप हो, कदापि वाञ्छनीय नहीं है। वस्तुतः यह उस होटलमें गोमांसभोजी लोगोंके अतिरिक्त दूसरोंको सर्वथा बहिष्कार करनेकी योजना है। गोमांस न खानेवाले धर्मभीरु लोग जहाँ गोमांस पकाया और परोसा जाता है, वहाँ कैसे ठहरेंगे और कैसे खायँगे ? सरकारका यह दुराग्रह सर्वथा अवाञ्छनीय और महान् दुःखजनक है। करोड़ों-करोड़ों देशवासियोंके धर्मकी परवा न करके एक सरकारी होटलमें, जिसके साथ महान् अहिंसक 'अशोक'का नाम जुड़ा है, गोमांस देनेका हठ करना सर्वथा अनुचित तथा अन्याय है। भारतीय सभी संस्थाओं तथा सभी समाजोंसे हमारी यह प्रार्थना है कि वे 'अशोक होटल'से गोमांस हटानेके लिये विनम्रताके साथ जोरदार भाषामें माननीय राष्ट्रपतिजी, माननीय प्रधान मन्त्रीजी तथा माननीय गृहमन्त्रीजीको नयी दिल्लीमें तारद्वारा प्रार्थना करें। साथ ही तुरंत गोहत्या बंद करनेके लिये भी लिखें !

एक नयी पुस्तक ! प्रकाशित हो गयी !!

गीताव्याकरणम्

लेखक—पं० श्रीदीवानचन्द्रजी शास्त्री, बी० ए०

सम्पादक—पं० श्रीगौरीशङ्करजी एम्० ए०, बी० लिट् (ऑक्सन) पी० ई० एस० (रिटायर्ड)

आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २८६, मूल्य १.०० डाकखर्च .८० मात्र।

प्रस्तुत पुस्तक संस्कृत-व्याकरणकी हिंदी माध्यमद्वारा ज्ञानोपलब्धिके साथ-साथ श्रीमद्भगवद्गीताके स्वाध्यायमें सहायता करनेके लिये लिखी गयी है। इसमें श्रीवरदराजकी पद्धतिका अनुसरण करते हुए श्रीमद्भगवद्गीताके प्रयोगोंसे पाणिनीयशैलीके आधारपर संस्कृत-व्याकरण समझने-समझानेका प्रयास किया गया है। लेखक महोदयने वरदराजकृत लघुसिद्धान्तकौमुदीके क्रमानुसार ही इसको प्रस्तुत करते हुए इसमें शब्द, प्रयोग तथा उदाहरण श्रीमद्भगवद्गीतासे उद्धृत किये हैं। पाठ्य-विषय अठारह प्रकरणोंमें रक्खा गया है। आशा है कि इस पुस्तकके द्वारा संस्कृत भाषाका पाणिनीयपद्धतिद्वारा सामान्य ज्ञान प्राप्त करके गीताके शब्दों और उनके अर्थोंका सत्य ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायता मिल सकेगी।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

कल्याणके २२वें वर्षका विशेषाङ्क 'नारीअङ्क' अब भी मिल सकता है

(प्रथम संस्करणके शीघ्र समाप्त होनेके कारण दूसरा संस्करण छापा गया है) पृष्ठ-संख्या ८००, लेख-संख्या ४४९, कविता ३२, संगृहीत ४७, चित्र सुनहरे २, रंगीन ९, इकरंगे ४४, तथा लाइन चित्र १९८, मूल्य डाकव्ययसहित ६ रु० २० नये पैसे, सजिल्द ७.४५ नये पैसे।

इस अङ्कमें नारी-धर्मकी महत्ता, नारी-जगत्‌का आदर और अधिकार, दर्शनशास्त्रमें नारी-जातिका माहात्म्य, अध्यात्मवादकी कसौटीपर नारीधर्म, नारी-शक्तिका सदुपयोग, नारीका उच्च आदर्श, भारतीय नारी क्या करे, नारी-तत्त्व-गौरव, भारतीय नारीमें पराशक्ति, भारतीय संस्कृतिमें नारीधर्म, भारतीय नारीका स्वरूप और उसका दायित्व, नारीकी आत्मकथा, वैदिक साहित्यमें नारी, नारी और वेद, उपनिषदोंमें नारी, स्मृति-ग्रन्थोंमें नारी, आधुनिक नारी, आदर्श नारी, जीवनकी पाठशालामें नारी, हिंदू-विवाहमें पत्नीका समादृत स्थान, विवाह-विच्छेद, हिंदू-विवाहकी पवित्रता, नारी-उन्नति, सतीत्वका तेज, मानसमें नारी, हिंदी काव्यमें नारी, स्त्री-शिक्षा, लड़कियोंकी शिक्षा, वर्तमान स्त्री-शिक्षामें परिवर्तनकी आवश्यकता, 'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्', लज्जा नारीका भूषण, बीसवीं सदीमें नारी, भारतीय नारीका कर्तव्य, नारी त्यागका सर्वोत्तम आदर्श, नारीकी देशसेवा, स्त्रियोंके रोग और उनकी घरेलू चिकित्सा, शिशुरोग, बालकोंकी शिक्षा, नारीके भूषण, नारीकी समस्याएँ, नारी और भोजन-निर्माण-कला आदि विविध विषयोंपर सम्माननीया देवियों एवं सम्मान्य बड़े-बड़े विद्वानोंके बहुत-से लेख प्रकाशित किये गये हैं।

इसके अतिरिक्त इस अङ्कमें ब्रह्मवादिनी, भक्तिमती, वीराङ्गना, पतिव्रता, सती-साध्वी पवित्र स्त्रियोंके लगभग सवा तीन सौ चरित्र भी प्रकाशित हुए हैं।

व्यवस्थापक—**कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे महान् सुधाभरे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं और इनका अध्ययन करके लाभ उठाते हैं। बहुत वर्षोंसे इन दोनों ग्रन्थोंके द्वारा मानवजीवनको उच्चस्तरपर ले जानेवाली शिक्षाका प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था चल रही है। उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षा-केन्द्रों तथा विद्यार्थियोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। गत सं० २०१७ में दोनोंके मिलाकर ४१० केन्द्र थे और लगभग ९६०० छात्र परीक्षामें बैठे थे। जब कि सं० २०१६ में ३५१ केन्द्र थे और लगभग ९००० छात्र ही बैठे थे। विशेष जानकारीके लिये नीचे लिखे पतेपर कार्ड लिखकर नियमावली मँगानेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक—**श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम (देहरादून)**

आवश्यक सूचना

'कल्याण'के सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार आजकल कुछ अनिवार्य कारणोंसे अधिक समय प्रायः एकान्तमें रहते हैं। वे गीताप्रेसके मुद्रक-प्रकाशकसे भी नाम हटा रहे हैं। किन्हींसे मिलने-जुलनेमें उन्हें सुविधा नहीं है। न पत्रव्यवहारके लिये ही सुविधा है। अतएव सभी महानुभावोंसे विनीत प्रार्थना है कि पत्र द्वारा पहले बिना पूछे उनसे मिलनेके लिये कोई न पधारें तथा विशेष आवश्यक कार्य होनेपर ही उन्हें व्यक्तिगत पत्र लिखें। किन्हींके पत्रका उत्तर न मिले या देरसे मिले तो वे महानुभाव कृपया क्षमा करें।

वे सार्वजनिक कार्योंसे भी अलग-से हो रहे हैं। अतः सार्वजनिक कार्योंके लिये भी उनको पत्र लिखने या उनसे मिलनेकी चेष्टा न करें, यह भी विनीत प्रार्थना है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

प्रकाशनके सम्बन्धमें प्रार्थना

गीताप्रेसमें पुस्तकोंकी माँग बढ़ जाने तथा मशीनोंकी कमीके कारण प्रकाशन-कार्यमें कुछ कठिनाइयाँ आ रही हैं। पूर्वप्रकाशित पुस्तकोंमेंसे कई इस समय स्टॉकमें नहीं हैं। और उनके पुनर्मुद्रणमें अनिच्छित देर हो रही है। यथासाध्य प्रयत्न किया जा रहा है कि उनके नये संस्करण शीघ्र प्रकाशित हो जायँ। हमारे ग्राहक तथा पाठक महोदय धैर्यपूर्वक क्षमा करें।

बहुत-सी नयी पुस्तकें (छोटी-बड़ी) सम्मान्य लेखकोंसे लिखवायी हुई और बाहरके विद्वानोंके द्वारा भेजी हुई प्रकाशनार्थ वर्षोंसे स्वीकृत हैं, पर समयाभावसे उनका प्रकाशन नहीं हो पा रहा है। इन्हीं उपर्युक्त दोनों कार्योंकी सुविधाके लिये 'महाभारत' नामक मासिकपत्र, जिसमें प्राचीन ग्रन्थोंका अनुवादसहित प्रकाशन हो रहा था, इच्छा न होनेपर भी तथा बहुत-से सज्जनोंका स्थगित न करनेका प्रेमाग्रह होनेपर भी बाध्य होकर स्थगित कर देना पड़ा है।

इधर बहुत अच्छे-अच्छे सम्मान्य विद्वानोंद्वारा रचित बड़ा ही उपयोगी साहित्य प्रकाशनार्थ आ रहा है, पर विवश होकर उसे लौटाना पड़ रहा है। कुछ महानुभाव वास्तविक परिस्थितिसे परिचित न होनेके कारण इससे असंतुष्ट भी होते हैं, पर उनसे हाथ जोड़कर क्षमाप्रार्थना करनेके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। नयी मशीनोंकी व्यवस्था की जा रही है। समय तथा सुविधा होनेपर ही नया साहित्य प्रकाशित हो सकेगा। इस विवशताके लिये हम सबसे सविनय क्षमाप्रार्थना करते हैं। कृपया नया साहित्य अभी न भेजा जाय, यह भी प्रार्थना है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**